# कैलाश-पथ पर

लेखक

रामशरण विद्यार्थी
B., A., LL. B.

प्रकाशक
शारदा मन्दिर लिमिटेड
नई सड़क, देहली

प्रथम बार ] [ मूल्य ।।।)

मुद्रक—अशोक प्रिंटिंग प्रेस, चांदनी चौक, देहली ।

# धन्यवाद

प्रस्तुत पुस्तिका के लेखन और प्रकाशन में मुझे अपने मित्र श्री० मिट्ठन लाल जी त्रिवेदी बी० ए०, श्री० राज नारायण जी गुप्त बी० ए०, श्री० ओमप्रकाश जी तथा श्री० पं० बालमुकन्द जी अनुरागी से जो सहायता मिली है उसका मैं हृदय से आभारी हूं। इन मित्रों के सहयोग से ही यह पुस्तिका लिखी जाकर प्रकाशित हो सकी है।

इसमें प्रकाशित चित्रों के लिये मैं अपने मित्र श्री० कुशलेश्वर प्रसाद शङ्करा बी० ए० तथा श्री० स्वामी योगात्मानन्द जी ( राम कृष्ण मिशन ) का हृदय से धन्यवाद प्रकट करता हूं कि जिन्हों ने मुझे वह प्रदान किये। अन्त में प्रकाशक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं कि जिन्होंने इसे सहर्ष और सपरिश्रम प्रकाशित किया।

रामशरण विद्यार्थी

# प्रारम्भिक शब्द

जिस प्रकार हिन्दू कवि या कलाकार के लिये रामायण और महाभारत प्रतिभा-स्फूर्त्ति के निरन्तर शाश्वत स्रोत हैं, ठीक इसी प्रकार भारतीय तीर्थ यात्री अथवा प्रकृति-सौन्दर्य दर्शनार्थी के लिये हिमालय का निरन्तर आकर्षण सदा से रहा है और सदा बना रहेगा। हिमालय की चोटियों का भारतीय आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में बहुत गौरव पूर्ण स्थान है। उनकी स्फूर्त्ति सदैव हमारे सामने नूतन और सजीव बनी रहती है। और कैलाश उन हिमालय की चोटियों में प्रमुख है जो यात्री को सदैव अपनी ओर खींचती हैं। कितने ही यात्रियों ने कैलाश की यात्रा की है और उनका वर्णन लिखा है, परन्तु प्रत्येक वर्णन के अन्दर नवीन रुचि और नवीन प्रकार मिलता है क्यों कि हिमालय के दृश्यों में अनन्त व्यञ्जना ( Infinite Suggestiveness ) भरी हुई है।

मेरे मित्र श्रीयुत रामशरण विद्यार्थी की सदा से भ्रमण में रुचि रही है और उनके आकर्षण का केन्द्र भी हिमालय ही रहा है। उनकी कैलाश यात्रा का वर्णन यदि कुछ नवयुवकों में इस प्रकार के साहस जङ्गल और पर्ण

पहाड़ों के भ्रमण विषय में उत्साह उत्पन्न कर सके तो उन का श्रम करना अवश्य सफल होगा। हमारे नवयुवकों में ऐसी साहस यात्राओं के विषय में बहुधा निरुत्साह पाया जाता है जो हमारी अकर्मण्यता का परिचायक है। मुझे आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक से इस दिशा में बहुत कुछ आवश्यक प्रोत्साहन नवयुवकों को मिल सकेगा।

मेरठ कालेज
५-२-३७

धर्मेन्द्रनाथ



परम पवित्र "कैलास"

# शुभस्य शीघ्रम्

ता० १७ जून १९३५ ई० को हम चार व्यक्ति श्री फकीरचन्द सैनी, श्री कुशलेश्वर प्रसाद शंकरा बी० ए०, तथा श्री कृष्णकुमार गौरवाला, नैनीताल से प्रस्थान करके अलमोड़ा पहुँचे। वहां अनायास ही कुमायूं के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री पं० बद्रीदत्त जी पाण्डे से भेंट होगई। उन्होंने हमें कैलाश यात्रा के लिये विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। तदुपरान्त श्री हरिश्चन्द्र जोशी एडवोकेट अल्मोड़ा तथा सुविख्यात देशभक्त श्री मोहन जोशी ने हमारे उत्साह की सराहना करके हमारा साहस और भी बढ़ा दिया।

अन्त में जब हमने इस यात्रा का निश्चय कर लिया तो रामकृष्ण मिशन के श्री स्वामी अनुभवानन्द तथा स्थानिक कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री ख्यालीरामजी पाण्डे ने यात्रा का प्रबन्ध आदि करने में हमारी पूर्ण सहायता की।

इस प्रकार हमने अपनी यात्रा का निश्चय कर लिया। श्री कृष्णकुमार गौरबाला के अतिरिक्त हम तीनों व्यक्ति और श्री स्वामी सन्तानन्द जी, स्वामी ज्ञानानन्द जी (जो कि पहले भी कैलाश दर्शन कर चुके थे) श्री ब्रह्मचारी चिन्मय चैतन्य तथा पं० नारायण स्वामी सहित अपनी यात्रा के लिये कटिबद्ध होगये।

युवकों की स्वाभाविक साहसिक वृत्ति से प्रेरित, जहां हृदय तिब्बत प्रदेश के प्रवेश के लिये अत्यन्त लालायित हो उठा, वहां हिन्दू धर्म के सर्वमान्य, पवित्रतम कैलाश दर्शन की उत्कंठा से हमारे शरीर में भी एक नवस्फूर्ति उत्पन्न होने लगी। इन सब के अतिरिक्त संग साथ और सुअवसर का मिलना भी दुष्कर समझ कुछ आंतरिक प्रेरणा सी हुई कि तिब्बत यात्रा के विचार को तुरन्त ही आचार में परिणत करना उत्तम होगा। समय अनुकूल था, क्यों कि जून का महीना ही इस यात्रा के आरम्भ के लिये सर्वोत्तम माना जाता है। इस प्रकार समय तथा अन्य सब बातें अनुकूल देख "शुभस्य शीघ्रं" का मन्त्रोचरण किया।

'कैलास यात्रा' और 'तिब्बत प्रवेश' के लिये बृटिश सीमा को उल्लंघन करने का सरलतम मार्ग लीपूलेक की घाटी से होकर जाता है जिसकी राह अल्मोड़ा से सीधी और सरल है। साधारण नियमानुकूल यात्री प्रायः एक मार्ग से जाते हैं और दूसरे से लौटते हैं। प्रायः बांई ओर से जाकर दांई ओर से लौटने का ही नियम है। इसके विपरीत आचरण उचित नहीं समझा जाता। अग्र लिखित ऊंचाई से न्यून पर बृटिश सीमा उल्लंन कहीं पर भी सम्भव नहीं है। जिला अलमोड़ा और गढ़वाल में तिब्बत के लिये घाटियों की ऊंचाई इस प्रकार है। (१) नीति घाटी- १६७५०, (२) लीपूलेक- १६७८०, (३) अन्तधुरा १७५९०, (४) माना- १७८९०, (५) निथी- १८५७० तथा लोकपियी १८१५० फ़िट है।

इस प्रकार लीपूलेक की घाटी से होकर 'तिब्बत प्रवेश प्रायः सरलतम मार्ग है क्योंकि लीपूलेक की ऊंचाई न्यूनतम ही है और यह मार्ग अन्य दूसरे मार्गों की अपेक्षा सरल तथा सुगम है। पूर्व में एक बार केदार और बद्री यात्रा कर आने के कारण अपनी तो इच्छा उस ओर के मार्ग से लौटने की न थी। साथ ही अपनी मण्डली का भी कुछ ऐसा ही निश्चय और इच्छा थी कि आने और जाने का एक ही सरलतम मार्ग रहे। अतः इस मार्ग से ही चलने के निश्चय करने में तनिक भी विलम्ब न लगा

शीघ्र ही चलने की धुन सवार हुई । 'कैलास-दर्शन' की प्रिय और पवित्र भावना ने कुछ ऐसी तीव्र प्रेरणा की कि शीघ्रातिशीघ्र प्रस्थान की योजना ही बन गयी । यह भी पुण्य कर्मों का फल था जो कैलास दर्शन की ओर अग्रसर हुए । भक्त कवि श्री तुलसीदास जी इसी कैलास की स्तुति में लिखते हैं ।

परम रम्य गिरिवर कैलासू ।
सदा जहां शिव उमा निवासू ॥
सिद्ध तपोधन योगिजन, सुर किन्नर मुनिवृन्द ।
बसहिं तहां सुकृति सकल, सेवहिं शिव सुखकन्द ॥
हरिहर विमुख धर्म रत नाहीं ।
ते नर तहां न सपनेहुं जाहीं ॥

प्रफुल्लित हृदय और मुदित मन हम सात व्यक्तियों ने २६ जून १९३५ को प्रातः ही उठ कर कैलास की ओर प्रस्थान किया । श्री स्वामी अनुभवानन्द जी महाराज ने हृदयस्पर्शी गगनभेदी स्वर से 'कैलासपति की जय' घोष के साथ हमें विदा किया ।

---

## उष्णता से ऊँचाई पर

१

# पर्वतीय दृश्य

ग्रीष्म ऋतु के आगमन से मैदान तो तांबे की कढ़ाई के समान तपने लगते हैं। साधारणतया मनुष्य की इच्छा इस ताप से बचने और शीतल जल तथा वायु के सेवन की होती है। इस ही भावना से प्रेरित हो लोग पहाड़ों के शीतल प्रदेश की ओर भागते हैं।

कुमायूं प्रान्त की चढ़ाई करने वाले प्रायः काठगोदाम से सीधे २२ मील दूर नैनीताल जाकर विश्राम लेते हैं। चारों ओर पर्वतों से सुरक्षित तथा मध्य में विशाल झील से

सुशोभित नैनीताल ७००० फीट की ऊंचाई पर स्थित है। झील लगभग एक मील लम्बी और आध मील चौड़ी है। इसके दोनों किनारों पर गरम और ठण्डी नामक दो सुहावनी सड़कें हैं, जिनके किनारों पर पेड़ों की मन भावनी छांह है। ताल के चौड़े रुख नीचे की ओर तल्ली ताल और ऊपर की ओर मल्ली ताल नामक वस्ती और बाजार हैं। ताल बस्ती के मध्य में स्थित होने से नगर की शोभा का केन्द्र है। इस ताल से ही वास्तव में सारी बस्ती की शोभा है। ताल में किश्ती चलाना, मछली पकड़ना, तैरना आदि नाना प्रकार की जल क्रीड़ायें की जाती हैं। यहां के निवासियों के लिये यह बड़े आनन्द का स्थान है।

ताल के ऊपर के भाग में एक बहुत चौड़ा मैदान है जो 'फ्लैट' के नाम से प्रसिद्ध है। 'फ्लैट' पर सायंकाल को सभी मनुष्य, नर नारी, वृद्ध युवा बड़े चाव से नाना प्रकार के रंग विरंगे वस्त्रों से आभूषित हो एकत्रित होते हैं। 'फ्लैट' पर प्रति सायंकाल को कोई न कोई नया खेल जैसे हौकी, फुटबाल, पोलो आदि होते हैं और रात्रि में इसके एक कौने पर स्थित नाट्यशाला में कोई न कोई अभिनय संगीत, नृत्य, या बोलता चित्रपट ( Talkie ) का प्रदर्शन होता है। सारे दिन यह बस्ती शहद की मक्खियों की भांति कार्य में व्यस्त रहती है। यहां पर बाहर से आने वाले व्यक्तियों की संख्या भी बहुत है। इन आगन्तुकों की लीला भी

विचित्र है। इन ही आगन्तुकों में से एक महाशय ने रात्रि को श्रमित हो अपने बिछौने पर ऐंड़ते हुए बहुत ही सत्य कहा "नैनीताल वास्तव में बिना ताल के घोर नरक है।"

जहां दिन भर प्रकृति-सौन्दर्य आनन्द देता है वहां रात्रि को मानव-कृति प्रकृति की छटा को द्विगुणित करती है। चारों ओर के पहाड़ों पर सड़कें और कोठियां भी हैं, जिनमें बिजली का प्रकाश तारों की भांति टिमटिमाता है और सारे नगर को रात्रि के घोर अन्धकार में अपने विचित्र प्रकाश से आलोकित करता है। इन बिजली के दीपकों की अगण्य परछाईयां ताल के जल पर आकाश में तारागणों के समान दिखाई देती हैं।

## नैनीताल या तालों का प्रदेश

नैनीताल से मोटरों की सड़क—घोड़ों की सड़क के अतिरिक्त—भुवाली को जाती है। घोड़ों का रास्ता बड़े ही छायादार वृक्षों नीचे से होकर जाता है। यह बड़ा सुगम और सुखकर प्रतीत होता है। भुवाली से नैनीताल का अन्तर इस मार्ग से केवल ६ मील है। पगडण्डी नैनीताल से सीधी मोटर की सड़क को आती है। यह सड़क काठगोदाम से भुवाली और रानीखेत होती हुई अल्मोड़ा जाती है गेठिया से भुवाली के लिये सड़क पर लगभग डेढ़ मील चलना पड़ता है।

भुवाली—एक रमणीक घाटी है और पर्वत के स्वर्गीय प्रदेश में प्रवेश करने के लिये प्रवेशद्वार है। यह स्थान लगभग ५५०० फीट ऊंचा तथा चारों ओर चीड़ के पेड़ों से आच्छादित होने के कारण, क्षय रोग ग्रसित रोगियों से परिपूर्ण रहने वाला विशेष स्थान है। यद्यपि यहां पर इन रोगियों के लिये एक स्वास्थ्य-गृह ( Sanatorium ) निर्मित किया हुआ है तथापि अनेकों रोगी अधिक सुख और न्यून व्यय के विचार से स्वास्थ्य-गृह से अलग बस्ती में रहते हैं। इस प्रकार यह ईश्वरीय आनन्दगृह एक रोगशाला में परिणत होगया है। मनोविनोद के हेतु आये हुए यात्री यहां नहीं ठहरते।

नैनीताल वास्तव में विशाल तालों का एक मुख्य प्रदेश है। इस प्रान्त में लगभग ६० छोटे बड़े ताल हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य और ईश्वरीय छटा में एक ताल दूसरे से कहीं बढ़ कर है। भुवाली से चार मील उतरने पर भीम-ताल आता है। इस स्थान को सुन्दर बनाने में ईश्वर ने तनिक भी कृपणता नहीं दिखाई, अपितु नैनीताल जैसी शोभा प्रदान की है। परन्तु मानवीय कृत्रिमता की न्यूनता यहां पद पद पर खटकती है। यह तो शासन ही का दोष है कि यहां पर वह सब सुख की सामग्रियां जो नैनीताल में प्राप्य हैं, दुर्लभ हैं; तथापि यह स्थान नगर की असहनीय उलझनों, जैसे धुआं, धूल और कोलाहल से पूर्णतया रहित

है। यहां पूर्ण शान्ति का साम्राज्य है और शान्तिमय जीवन के लिये सुगम आश्रय है। यहां की प्रान्तिक समिति ( District Board ) के प्रबन्ध से इस ताल के किनारे सुन्दर और स्वास्थ्यकर स्थान पर एक बड़ा ही सुखदायी निवास गृह ( Dak Bungalow ) बना है। यहां पर जीवन के सभी आवश्यक पदार्थ सरलता से प्राप्त होते हैं। इसका मुख्य कारण जिन्द महाराज का ग्रीष्म ऋतु में यहां रहना है। जलवायु बहुत प्रिय और हितकर है। इस स्थान की सब से अधिक ऊंचाई केवल ४५०० फीट है इस कारण यहां पर शीतोष्ण का सुन्दर सम्मिश्रण है। ताल कारण जल भी सुलभ है।

इस ताल से लगभग दो मील की दूरी पर एक छोटा सा तड़ाग है। यह नल-दमयन्ती नामक तड़ाग एक छोटे से बाग और शिव मन्दिर से सुसज्जित है। वास्तव में यह स्थान बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। यहां तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति माता अपनी गोद में अपने इन प्रिय बाल-तालों से मधुर हास्यमय मनोविनोद कर रही है। शीतल वायु और मधुर जल का प्रवाह, पुष्पों की कलियों का खिलना और सुगन्धि फैलाना, वृक्षों की सुशीतल छांह और चिड़यों का चहचहाना ईश्वरीय रचना का बड़ा ही कलामय प्रदर्शन और प्रत्येक मानव

हृदय के लिये सुखकर और चित्ताकर्षक है। किसी फ़ारसी कवि ने काश्मीर के सम्बन्ध में लिखा है:—

"गर फ़िरदौश बररूए ज़मीं अस्त, हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त" अर्थात् यदि संसार में कहीं स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है। और यही बात इस स्थान के चप्पे चप्पे पर लागू होती है। दमयन्ती ताल से एक मील की चढ़ाई पर सात ताल की सीमा प्रारम्भ होती है। यहां 'पन्ना ताल' 'राम सीता ताल' तथा 'गरुड़ ताल' एक दूसरे के निकटस्थ हैं यह तीनों ताल एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हैं। 'पन्ना ताल' के किनारे प्रसिद्ध ईसाई पादरी डाक्टर स्टनले जौन्स का प्रार्थना स्थान है। इसी प्रदेश में जौन्स साहब का आश्रम है। वास्तव में यह भारत के पतन का जीता जागता चित्र है कि ईश्वरीय प्रकृति के उपासक भारतीय, आज नगरों के विशाल कालिज और स्कूल भवनों, नाट्यशालाओं या कारागृहों में बन्द हैं और आनन्दोपभोग तथा ऐश्वर्य युक्त सुख-लालसा के अन्ध भक्त पाश्चात्य देशवासी प्रकृति के विशाल हृदय पर निर्द्वन्द्व क्रीड़ा करते हैं और उसका पूर्ण रूपेण लाभ उठाते हैं।

भीमताल से चार मील "नो कुचिया ताल" है जो अपनी विशालता और सुन्दरता में सभी अन्य तालों से बढ़ कर है। यह प्रान्त वास्तव में अनेकों ही बड़ी बड़ी

झीलों का संग्रहालय है। और यह झीलें अनन्त जल श्रोत की धात्री हैं। इन्हीं जलाशयों में सुख और शान्ति का सदैव निवास प्रतीत होता है जो सहवास से ही सुलभ है।

भीमताल से सात मील चढ़ाई और दो मील उतराई कर रामगढ़ आता है। यह सेब के पेड़ों का उद्यान है। यहां पर आर्यसमाज के श्रद्धेय नेता श्रीनारायण स्वामी जी निवास करते हैं। यहां पर पेड़ों की छांह, नदी का प्रवाह और फलों की सुलभता मनमोहक है।

रामगढ़ से लगभग नौ मील मुक्तेश्वर नाम का शिखर है। नैनीताल जिले में एक उच्चतम पर्वतीय शिखर है जिस पर मानव-बस्ती स्थित है। यह स्थान अत्यन्त ठण्डा और सदा वेगशाली वायु से कम्पित रहता है। यहां की सुंदर बस्ती सुनिर्मित है और सुविधा पूर्वक आदर्श रूप में बसाई गई है। यहां पर भारत की जानवरों के रोगों के खोज की प्रयोगशाला (Imperial Institute for veterinary research) स्थापित है। इस संस्था में सारे भारत के पशु-चिकित्सक शिक्षा और ज्ञान वृद्धि के हेतु आते हैं। यह स्थान दैवी दृष्य देखने के लिये बहुत ही उपयुक्त है। यहां से हिम-दर्शन हिमालय के उच्च शिखरों की ज्योति का प्रकाश दर्शाता है। किसी किसी प्रातः को तो दूर तक हिमालय ही हिमालय श्वेताम्बरी रूप में बड़ा ही अवर्णनीय

तथा उल्लासमय प्रतीत होता है। इस स्थान से चौदह मील चल कर अल्मोड़ा पहुंचते हैं। यह स्वयं इसी नाम के प्रान्त की राजधानी है और स्वास्थ्य के लिये प्रसिद्ध और अति उपयुक्त स्थान है।

## भक्ति और सहन शक्ति

जहां चाह होती है वहां मनुष्य राह खोज निकालता है। इच्छा बलवती है। आन्तरिक प्रेरणा से उत्पन्न इच्छा मनुष्य से जो निश्चय कराती है वह दृढ़ धारणा होती है। यही धारणा जब अपनी इच्छा पूर्ति के हेतु सर्वत्याग और कष्ट सहन को उद्यत हो जाती है तब भक्ति का रूप धारण कर लेती है। भक्ति एक महाशक्ति है। इसी प्रकार की शक्ति हमारे हृदयों में कैलाश दर्शन की भी रहीं। भक्ति की परीक्षा यात्रा के प्रथम दिवस से प्रारम्भ होती है।

२६ जून १६३५ को प्रातःकाल हमारे हृदय कैलाश के दर्शन उत्साह से भरे हुए हैं। इस पहाड़ी प्रदेश में भी इस समय सूर्य की किरणें इतनी प्रखर हैं कि व्याकुल किये देती हैं रास्ते के पत्थर धूप से तप कर लाल होगये हैं। ऊपर से धूप की गर्मी तथा नीचे से पत्थरों में से निकली हुई भभक व जलन शरीर को झुलसाये देती है। इस प्रकार सूर्य ताप से सन्तप्त अल्मोड़े से आठ मील उत्तर की ओर बाराछीना पहुंचे। इस स्थान की ऊँचाई समुद्र की सतह से केवल

३००० फ़ीट है। इस प्रकार अल्मोड़ा से भी २००० फ़ीट अधिक गहराई में होने के कारण यह स्थान बहुत गर्म है और मध्यान्ह के ताप से तो यह भाड़ के समान भुनने लगता है।

दिन के ढलते समय जहां सूर्य की ऊष्णता तथा कान्ति घटती जाती है वहां चढ़ाई के कारण सांस फूलना उष्णता को कम नहीं होने देता। बाराछीना से ६ मील की चढ़ाई धौल-छीना की ६००० फ़ीट की ऊंचाई पर समाप्त हो जाती है। इस प्रकार पहले दिन पूरे चौदह मील चल कर श्रमित तथा सूर्य ताप से संतप्त शरीर को केवल हृदय की भक्ति ही आश्वासन देती है। धौलछीना एक सुंदर और सुखकर विश्राम स्थान है। यहां का शीतल जल और शीतल वायु बहुत ही हृदय ग्राही है। दिन भर की तपस्या और श्रम के पश्चात् रात्रि के विश्राम का प्रिय होना स्वाभाविक ही है।

रात्रि विश्राम के पश्चात पूर्ववत दिनचर्या की पुनरावृत्ति हुई। पांच मील की सीधी उतराई कर कनारीछीना पहुँचे। वहां से सरल तथा समतल राह पर लगभग पांच मील दूर सरयू नदी के तट पर शीराघाट है। इस स्थान की ऊँचाई लगभग २००० फीट है। अब तक के देखे हुए सभी पहाड़ी स्थानोंमें यह सबसे गरम है। सरयू गंगाके तट पर नाना प्रकार के वृक्षों की शीतल छांह के बीच यह स्थान बड़ा ही मनोरम प्रतीत होता है। सरयू के ऊपर लोहे का झूलता हुआ पुल

है। पुल के पार छोटा सा पड़ाव है जहां पांच चार दूकान तथा विश्राम स्थान है। यहां जामुन, आम, हैड, गौंद काकड़, काकड़ी, खीरा व आमेड़ा आदि के पेड़ हैं। जल और वायु दोनों ही अत्यन्त गर्म हैं। यह स्थान मैदान की गर्मी की याद दिलाता है। यहां सरयू का दृश्य बड़ा ही रमणीय और भावोत्पादक है। सरयू की तरहटी दो भागों में विभक्त है। इसके एक ओर श्वेत निर्मल जल कलोलें मारता हुआ वेगपूर्ण गति से प्रवाहित होता है और दूसरी ओर नाना रूप रंग के असंख्य पाषाण समूह से आच्छादित है। इन पाषाणों की शोभा अनन्त है प्रत्येक अपने अपने रूप में अपने ही समान है यहां का सुंदर दृश्य देख कर हृदय उल्लास से भर जाता है।

मध्यान्ह-समय लगभग तीन मील चढ़ाई कर नरवा-बोल पहुंचे। वहां दो एक जलहीन दुकानों का असुविधाकर आश्रय देख फिर तीन मील उतर कर गनाई के समीप तपोवन में विश्राम किया। गनाई में पांच चार दुकान, डाकखाना, प्राइमरी स्कूल और फौरेस्ट डाकबंगला है। यह स्थान भी बहुत गर्म है। तपोवन में तो केवल एक छप्पर का आश्रय है जिसके नीचे रात्रि की गरमी में श्रमित होने के कारण ही निद्रा आकर विश्राम देती है। पिछले दो दिनों की गर्मी में अत्यधिक सूर्य ताप से शिर जलता रहा

और वायुमण्डल की उष्णता तथा चढ़ाई उतराई के श्रम से हृदय की भक्ति और सहन शक्ति की असीम परीक्षा जान पड़ती रही और ऐसा प्रतीत होता रहा कि वास्तव में भक्ति में सहनशक्ति की पराकाष्ठा और अन्तिम परीक्षा है।

---

# पसीनों के प्रवाह में

२८ जून को प्रातःकाल साधारण उतराई चढ़ाई के मार्ग पर डेढ़ मील चल कर एक पहाड़ी नाला मिलता है। यहां पर पानी की तो सुविधा है परन्तु शीतल जल न होने से वह रुचिकर नहीं लगता । यहां से ढेढ़ मील दूरी पर जाकड़ी गांव है । सड़क के समीप ही पहाड़ी चट्टान पर एक छोटी सी दुकान है। यह दूकान बड़ी ही रमणीक और चित्ताकर्षक है। आसाम प्रान्त की पत्तों से छाई हुई मार्ग की छोटी छोटी दुकानों से इसकी बड़ी ही

उपयुक्त तुलना की जा सकती है। आसाम की भांति यहां पर भी कुछ चाय आदि का प्रबन्ध रहता है। इस एकान्त तथा शान्त स्थान पर श्रमित पथिक के चित्त को स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है। यहां से वांसपटान नामक ग्राम समीप होने के कारण यह स्थान भी वासपटान नाम से ही सम्बोधित होता है।

आगे मार्ग में गोदागाढ़ नामक ग्राम है जहां पर एक दूकानभी है। उससे डेढ़ मील की दूरी पर सुखलाड़ी और एक दुकान का पड़ाव है। यहां पर गोदागाढ़ नाला बहता है। इस से ३ मील की दूरी पर ७००० फीट की ऊंचाई पर से होकर उतरते समय ६००० फीट की ऊंचाई पर बेरीनाग नामक एक पहाड़ी नगर पड़ता है। चलते चलते दम फूल जाता है और सारा शरीर पसीने से तर हो जाता है। इस प्रकार वाष्प स्नान करते हुए और हांफते हुए ७००० फीट की ऊंचाई पर पहुंच कर थोड़ी शीतल वायु से विश्राम और शान्ति पा लगभग १००० फीट की उतराई कर वेरीनाग के बाज़ार में पहुंचते हैं।

वेरीनाग एक छोटा सा सुन्दर पहाड़ी नगर है। यहां पर डाकखाना, शफ़ाखाना, प्राईमरी और मिडिल स्कूल तथा डाकबंगला हैं। यहां एक छोटा सा बाज़ार भी है जिस में दरज़ी, बजाज, पंसारी, हलवाई, सुनार आदि की दुकानें हैं। वेरीनाग में जहां ये सब सुविधायें हैं वहां

जल का तो अकाल ही है। जल की कमी के कारण रात्रि-विश्राम ढ़ाई मील की उतराई कर गढ़तल या गढ़तीर में पहुंच कर किया। पसीनों से तर कपड़े रात्रि भर में सूखने भी न पाये थे कि दूसरी प्रातः साढ़े सात मील रामगङ्गा नदी के तट थल नामक स्थान पर पहुंचे। यह स्थान तीन हजार फीट ऊंचाई पर है।

'थल' विश्राम के लिये सुविधा जनक स्थान है। रामगङ्गा का किनारा और पेड़ों की छांह है। यहां केला और आम आदि के वृक्ष हैं। यहां पर स्कूल, डाकखाना, और कई दुकानें हैं। इस पहाड़ी अड्डे में पसीनों का प्रवाह नदी के समान बहता है और वस्त्रों में ही समाकर सारे शरीर को निरन्तर पसीनों के जल में तर किये रखता है। इस प्रकार पसीनों में भीगे और पसीनों के प्रवाह में बहते हुवे ही यह दिन बीते।

## 'बांझ के भयानक वन'

पर्वतों पर ३००० फ़ीट की ऊंचाई से लेकर ६००० फ़ीट तक चीड़, ६ से ६ हजार तक देवदारु ६ से १२ तक भोजपत्रों के वृक्ष, १२ से १५ हजार तक वृक्ष विहीन नंगे पर्वत, जहां कहीं कहीं घास होती है, मिलते हैं और इससे आगे हिमराज्य का आरम्भ होता है, जहां पर किसी प्रकार के भी वृक्ष नहीं होते और वर्षा ऋतु के अतिरिक्त सदा बर्फ़

से ढके रहते हैं। वर्षा ऋतु में बर्फ़ पिघल जाती है और जल के बाहुल्य के कारण नाना प्रकार के अनेकों रंग बिरंगे पुष्पों के पौदे दृष्टिगोचर होते हैं।

पहाड़ी वनों का अग्नि काण्ड भी एक विचित्र घटना है। दावानल का नाम बहुतों ने सुना होगा। परन्तु देखा बहुत ही कम ने है। पहाड़ पर अग्नि की गगन-चुंवी लाल-लाल ज्वालायें ऐसी दृष्टिगत होती हैं मानो अग्निदेव कुपित हो, महाविकराल कालरूप धारण कर संसार का भक्षण करने निकले हों। सारा आकाश धुएं से भरा प्रतीत होता है। पेड़ों के जलने से चटाचट होने का शब्द चांदमारी की गोलियों के चलने के समान प्रतीत होता है। पर्वतीय लोग सरकार द्वारा अरक्षित जङ्गलों में सूखे पत्ते जलाने और अपने खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये प्रायः अग्नि लगा दिया करते हैं। यह अग्नि भी कभी कभी भयंकर रूप धारण कर दौड़ती है। एक ओर लगी हुई अग्नि दूसरी ओर वेग से चली जाती है। अग्नि प्रवाह को रोकने के लिये ऐसे ही दूसरी ओर भी लोग अग्नि लगाते हैं। अग्नि प्रवाह के वेग को अग्नि ही सरलता से रोक पाती है। इस प्रकार एक ओर से वेग से चलती हुई अग्नि दूसरी ओर की ज्वालाओं से शान्त हो जाती है।

बांझ के वन भी पर्वतों पर मिलते हैं। यह प्रायः ४००० फ़ीट की ऊंचाई से ८००० फ़ीट की ऊंचाई तक पाये

जाते हैं। इस प्रकार थल से चढ़ाई करते समय, दीदीहाट को जाते हुए, मार्ग में बांझ का घना जंगल पड़ता है। थल से तीन मील की चढ़ाई और सात मील समतल पथ पर चलकर दीदीहाट आता है। इस स्थान की ऊंचाई साढ़े पांच हज़ार फ़ीट है। इस सारी राह में प्राय: बहुत ही घना बांझ का वन है। इसमें शेर, रीछ आदि वन्य पशु भी मिलते हैं। बांझ का पेड़ बहुत विशाल और सायेदार होता है। इसकी छत्रछाया में वन में हर समय रात्रि के समान अन्धकार छाया रहता है। सूर्यदेव की किरणें सम्भवत: कहीं भी अपना प्रवेश नहीं कर पातीं। पेड़ों के नीचे सूखे हुए पर्ण बहुत ही सुहावना और कोमल बिछौना सा बिछा देते हैं। इन अंधियारे, सुखकर, सायेदार और शांत वनों में महा भयंकर वन्य पशु निर्भय और निशंक हो विचरण करते हैं। मनुष्य का तो साहस ही कहां जो इन वनों में प्रवेश कर पाये। वन के राजा शेर का भय तो प्रत्येक पथिक के हृदय में प्रतिक्षण भयंकर रूप में बना रहता है। इन वनों के बीच में चलना मनुष्य हृदय के साहस की असीम परीक्षा है।

ऐसा ही भयंकर बांझ वन आगे भी सिरका ग्राम में चढ़ाई करते समय मिलता है। उस वन में भी लगभग तीन मील चलना पड़ता है। यह बांझ के वन बहुत ही घने और भयावने हैं। इनके बीच चलते समय हृदय बहुत दहलता है। एक दो का तो साथ चलना भी सुरक्षित नहीं। इनमें

चलने के लिये जितना भी विशाल दल हो उतना ही सुरक्षित है। सिंह के अतिरिक्त भालू या रीछ की भी अधिकता है। यह पशु भी बहुत भयंकर और बलशाली होता है। इसके पंजे में पड़कर किसी भी मनुष्य का जीवित रह जाना सम्भव नहीं है। इन रीछों के घातों से बचने के लिये मनुष्य मंडली बनाकर ही चलते हैं। रात्रि में इन पथों पर कोई भी राहगीर नहीं चलता। और का तो कहना ही क्या सरकारी डाक ले जाने वाले भी रात्रि को इन वनों में प्रवेश नहीं कर पाते।

बांझ के पेड़ का कोई और उपयोग तो नहीं परन्तु कुमायूँ वासी सभी इनको जलाने के प्रयोग में लाते हैं। बांझ की लकड़ी भवन निर्माण व अन्य किसी उपयोगी काष्ठ सामग्री के काम नहीं आती। यह तो केवल इंधन के ही काम आती है। बांझ के वन जहां भय से भरपूर हैं वहां शीतल और सुहावने भी हैं। इन में शांति का तो प्रायः पूर्ण साम्राज्य है। शीतल समीर का प्रवाह वृक्षों के पत्तों से बहता हुआ बहुत प्रिय और मधुर संगीत स्वर उतपन्न करता है। अनेकों बार तो मनुष्य इन वनों में चलते समय आत्मीय ज्योति और आत्म-चिन्तन में निमग्न हो बड़ा ही आनन्दित हो उठता है। वास्तव में बिना भय के कुछ भी प्राप्त नहीं होता और बिना कष्ट के कोई सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

यह बात इन भंयकर बांझ-वनों से पूर्णतया प्रमाणित होती है, कि जहां बांझ के वनों में भय है वहां शान्ति और सुख का भी मनोरम आश्रम है।

---

## ३

# चारों ओर जल ही जल

बांझ के वन पार कर दीदीहाट आये। दीदीहाट एक खुले से मैदान पर बसा हुआ है। यहां पर एक प्राइमरी और मिडिल स्कूल के अतिरिक्त दो एक दूकाने भी हैं। यहां से सात मील सीधा व साधारण मार्ग असकोट को जाता है इस मार्ग में चढ़ाई उतराई केवल नाम मात्र को ही है। असकोट पहुंचने पर विश्राम के लिये फिर एक सुविधाजनक स्थान मिलता है। असकोट पांच हजार फीट की ऊंचाई पर एक सुंदर पर्वतीय नगर है। वहां पर एक छोटा सा बाजार है जहां पर खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त

वस्त्र आदि की भी दूकानें हैं। इसमें एक प्राइमरी स्कूल डाकखाना और डाकबंगला भी है। वहां का जमींदार रजबार कहलाता है जो कत्यूर राजवंश का वंशज है। पूर्व समय में इस राजवंश ने काबुल से नैपाल तक राज्य किया था। अब यह वृटिश राज्याधीन है। और यहां पर बहुत सम्मानित हैं। इनके अधीनस्थ इनको राजा के तुल्य मानते हैं। यह स्वयं एक सुशिक्षित सज्जन हैं और बड़े उदार हृदय जान पड़ते हैं। इनकी ओर से कैलाश यात्रियों तथा पथिकों के लिये एक धर्मशाला बनी है जिसमें प्रत्येक आगन्तुक को रजबार साहब की ओर से भोजन-सामग्री दी जाती है।

पहली जुलाई को हम प्रातःकाल वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही वर्षा जल में भीगते हुए अपने मार्ग पर अग्रसर हुए। यहां से तीन मील की खड़ी व दुष्कर उतराई कर गोरी गङ्गा का पुल पार कर पर्वतीय जल-वर्षा का आनन्द लेते हुवे गोरीगङ्गा के किनारे किनारे संभल संभल कर चलते रहे। मार्ग में फिसलन का भय, सड़क का टूटना और ऊपर से पहाड़ी पत्थरों का गिरना साधारणतः हृदय को कम्पित करता है। इस प्रकार निरन्तर जल वर्षा में गोरी और काली गङ्गा के सङ्गम से काली नदी के किनारे किनारे सीधे और समतल मार्ग पर हम चलते रहे। सारे रास्ते भर वृष्टि-जल, जो पहाड़ों पर होकर आता है वह पहाड़ी मिट्टी से

मिल कर मटियाला हो जाता है और पहाड़ी झरने नदी नाले आदि के जल में मिलकर उसे भी पीने योग्य निर्मल नहीं रहने देता। देखने को तो सर्वत्र जल ही जल दृष्टिगोचर होता है परन्तु पीने को कहीं बूंद भी जल प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार पूर्णतया क्षुधा और पिपासा से व्याकुल मृग-तृष्णा के समान जल की खोज में बलवाकोट पहुंचे। यह एक छोटा सा गांव है जिसमें केवल एक छोटी सी मुसलमान की दूकान है। जल की खोज यहां भी व्यर्थ ही रही और अन्त को निराश हो जल विहीन मीन के समान प्यास से तड़फते हुये आगे बढ़े।

मध्यान्ह का समय था सूर्य की प्रज्वलित किरणों से सिर फुंक रहा था। प्यास से कण्ठ शुष्क हो रहा था। इस प्रकार पूर्णतया अस्त व्यस्त जल ही जल पुकारते पद पद गिनते हुवे आगे बढ़ते रहे। मार्ग में एक ओर चार पांच छोटे मकान दृष्टि-गोचर हुए। पूछने से ज्ञात हुआ कि यह नंगतर ग्राम है। पुनः तनिक साहस कर पिपासा शांति की आशा से इस ग्राम में पहुंचे। वहां पर एक निर्धन बालक लालसिंह जो दीनता और दरिद्रता की जीवित मूर्ति था सर्व प्रथम श्रद्धा से हमारे निकट आया। हमारी तो केवल एक ही चाह थी और वह भी केवल जल की। वह हृदयवान दीन हीन ग्रामीण हमारी दशा पर द्रवित हो अपनी दुःखिनी माता के पास भागा हुआ कुछ खाद्य

और पेय पदार्थ की खोज में पहुँचा। माता का हृदय भी कम दयालु और कोमल न था। वह अत्यन्त निर्धन होते भी, बड़े संकोच से थर थर कांपती हुई अपने घर से दो तीन कटोरों में खट्टी छाछ लेकर हमारे सामने आ उपस्थित हुई। यह छाछ अमृत समान जीवन दायिनी, मधुर तथा स्वादिष्ट लगी। अपनी पिपासा को शांत कर, इस भांति आत्मा की सात्विक सत्कार-वृत्ति की सराहना करते हुए हम चल दिये। चलते समय हम में से एक ने कुछ साहस कर इस माता को कुछ दक्षिणा देने की इच्छा की यह सुन कर माता बड़े करुण शब्दों में धीरे से बोल उठी। "बेटा! मेरा इस प्रकार अपमान न करो।" बस लज्जा से नत मस्तक हो भारत की दरिद्रता, विशेष कर पर्वतीय प्रान्त के कृषकों की दुर्दशा पर हमारे नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली।

थोड़ी चढ़ाई और उतराई पहाड़ी मार्गों का साधारण नियम है। इसी के अनुसार साधारण चढ़ाई उतराई करते असकोट से पूरे सत्रह मील की दूरी पर काली नदी के किनारे स्थित 'कालिका' नामक स्थान पर विश्राम किया। यहां पर फूंस से छाई हुई दो दूकानें और एक पाठशाला है। एक ओर एक पहाड़ी नाला बड़े वेग से बहता है। उसके दूसरी ओर एक छोटा सा जोशीखेत नामक ग्राम है। चारों ओर पहाड़ी से घिरा हुआ, नदी और नाले के संगम पर यह रमणीक स्थान है। ईश्वरीय लीला और कला का यह

सुन्दर परिचायक और स्मारक है। आस पास में हरे भरे खेत हैं यह ज़मीदारों की बस्ती है। दीनता का तो अटल साम्राज्य दिखाई देता है। मार्ग भी कष्ट पूर्ण है। इन सब कठिनाइयों के बीच यह स्थान विशेष भावोत्पादक है। स्थान की ऊँचाई लगभग ३०००फीट है परन्तु नदी और नाले से सीमित होने से शीतल और मधुर हैं। यहां विश्राम परम शान्ति दायक और आनन्दोत्पादक प्रतीत हुआ। इस थकान में भी साथियों के सुन्दर संग के कारण श्रम तनिक भी प्रतीत नहीं हुआ और सहसा मुख से निकल पड़ा:—

"संगति कीजे साधु की, हरे और की व्याधि।"

आज जल वृष्टि के कारण हमारे कुछ साथी और भोजन सामग्री पीछे रह गये। मार्ग में फिसलन थी और पहाड़ से पत्थर गिरते थे। अंधेरी रात थी, वर्षा हो रही थी। इस कारण हम सब चिंता और उत्सुकता से साथियों की प्रतीक्षा में थे। रात को नौ बजे सहसा मार्ग से आता हुआ प्रकाश दृष्टिगत हुवा। तनिक उत्साह तथा आशा से हम लोग अपने साथियों के स्वागत के लिये आगे बढ़े परन्तु यह जान फिर स्तम्भित होगये कि एक घोड़ा फिसल गया और हमारी सब सामग्री भी मार्ग के नीचे गिर पड़ी। साथ में एक घोड़े वाला गिरकर मरने से बाल बाल बचा परन्तु फिर भी यह घटना दुःखान्त न होकर सुखान्त ही रही और सब साथी आनन्द पूर्वक आ मिले।

कालिका से धारचुला के लिये सादा और सरल मार्ग है कुल पांच मील का अन्तर है। मार्ग में जहां तहां जल प्राप्त हो जाता है। यह विस्तृत घाटी बड़ी उपजाऊ है। यहां के विशाल क्षेत्र भली भांति हरे भरे हैं। यहां नाना प्रकार के वृक्ष भी हैं। मार्ग में यत्र तत्र भूटियों के विशाल भवन दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु यह सब निर्जन भवन हैं इनके द्वार विशाल पाषाण समूह से अवरुद्ध किये हुवे हैं। ज्ञात हुवा कि शरद् ऋतु में भूटिया लोग इनमें रहते और व्यापार करते हैं और ग्रीष्म के आगमन पर अपने घरों को इस प्रकार बन्द करके भोट और तिब्बत की ओर व्यापार करने चले जाते हैं।

धारचुला पहुंचने पर हमारी यात्रा का प्रथम अध्याय समाप्त होजाता है। यहां तक पर्वतीय नागरिक जीवन देखा, उष्णता से ऊंचाई पर चढ़े, धूप की गरमी सहन की, पसीनों के प्रवाह में स्नान किये, भयानक बांझ के वन पार कर अन्त को जब प्यास से व्याकुल जल ही जल देखकर कह उठे कि सर्वत्र जल ही जल है किन्तु पीने को बूंद भी नहीं।

इस प्रकार हमारी यात्रा का प्रथम भाग अर्थात् धारचुला तक का मार्ग कठिन तथा संकटाकीर्ण रहा। धारचुला भूटिया और कमायुं के मिश्रत लोगों की बस्ती है यहां एक बाजार, कुछ दूकानें और ठहरने के लिये स्थान

है। भोजन और जल सुलभ है। यहां पर डाकखाना और प्राइमरी स्कूल भी हैं। इसी स्थान से वेगशाली काली नदी को पार कर लोग नैपाल को जाते हैं। रस्सी के पुल से नदी को पार करना भी एक आश्चर्यमय दृश्य है। दो रस्से नदी के ऊपर लटके रहते हैं, उन रस्सों में एक रस्सी लटका कर और उसे पीठ से बांधकर मनुष्य को हाथ और पांव से बन्दर के समान कला सी करनी पड़ती है। रस्से को हाथ से पकड़ कर नदी को पार करते हैं। यह बहुत भयानक काम है। केवल चतुर तथा अभ्यासी ही प्रयास कर सकते हैं।

धारचुला से यात्रा का दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। यहां से भयानक मार्ग प्रारम्भ होजाता है। यह पथ कैलास-मार्ग को उन भयों में से ले जाता है जहां जीवन और मरण सदैव ही भयंकर भयों के अधीन रहता है। धारचुला से आगे घोड़े आदि भी नहीं जा सकते केवल कुली लोग ही भारवाहक का कार्य करते हैं। धारचुला से दो मील दूर तपोवन नामक एक आश्रम है। विधवा श्रीमती रूपादेवी कैलास यात्रियों की बड़ी स्नेह और श्रद्धा से सेवा करती हैं। श्रमित पथिक लोग इस स्थान पर बड़ा ही प्रिय विश्राम लाभ करते हैं। वास्तव में यहां की शांति बड़ी ही आनन्ददायी है और आने वाले कष्टप्रद तथा भयानक मार्ग के लिये पथिकों को शक्ति और साहस प्रदान करती है।

---

४

# कुमायूं में

भारत के उत्तर पर्वतीय प्रदेश का एक भाग कुमायूं के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अल्मोड़ा नैनीताल गढ़वाल इन तीनों जिलों का एकीकरण है। प्राकृतिक रचना में यह भाग भारत के सारे स्थलों से भिन्न है। अभी जिन लोगों ने कभी पर्वत प्रवास नहीं किया अथवा जिन्हें पर्वतीय जीवन का कुछ ज्ञान और अनुमान नहीं उनकी तो ऐसी धारणा है कि पर्वतों पर खाट के दो पाये पेड़ों से लटका कर और दो पहाड़ की ढालू सतह पर ठहरा कर ही पर्वतीय लोग रात्रि को विश्राम करते हैं। कुछ अनभिज्ञ लोग तो पर्वतों को

केवल नदियों और वैश्याओं का उद्गम स्थान समझते हैं। परन्तु वास्तविकता तो कुछ और ही है।

कुमायूं के अधिकांश निवासी हिन्दू हैं। यहां के हिन्दू 'खसिया' वंश के माने जाते हैं। खसिया निस्संशय आर्य हैं। परन्तु वह लोग पूर्णतया हिन्दू धर्म शास्त्रों का अनुकरण नहीं करते। बहुत से नियमों और व्यवहारों में इनका आचरण हिन्दू धर्मानुकूल नहीं पाया जाता। तथापि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनका पूर्ण प्रयत्न धर्म के प्रत्येक नियम, रीति और रूढ़ि पर आरूढ़ होकर आचरण करने का है। यह भारत के अन्य अनेकों भागों में बसे हुए हैं। उनमें से कुछ बुद्ध तथा यवन मतानुयायी बन गये हैं। इनका मूल निवास काश्मीर बताया जाता है।

जिले अल्मोड़े की ९० प्रतिशत जनसंख्या तथा नैनीताल की ७० प्रतिशत, कृषि कार्य में संलग्न हैं। यहां के कृषक स्वयं ही कृषिकार और जमींदार हैं अर्थात् भूमि पर इनका निजका स्वामित्व है। यहां के कृषिकों की दशा ग्रामीण भारत में सर्वोत्तम है। कृषकों के अतिरिक्त यहां की अन्य जनता कलाकौशल और उद्योग धन्धों में व्यस्त है। कुछ लोग व्यापार और अन्य स्वतंत्र कारोबार भी करते हैं। यहां कृषि कार्य प्रायः स्त्रियां ही करती हैं। प्रायः कम्बल आदि बुनने के कामों पर स्त्रियों का एकाधिकार है। लोहे का काम भी यहां का प्रमुख कार्य है।

यहां के लोग पौराणिक धर्मानुयायी हैं। यहां सर्वत्र कुछ न कुछ धार्मिकता अब भी अवशिष्ट है। संध्या पूजन आदि पठित अपठित और ग्रामीण सब ही करते हैं। दैत्य और दानवों की पूजा सभी अधम जातियों में प्रचलित है। चारों वर्णों में ब्राह्मण और क्षत्री यहां बहुसंख्यक ह। निम्न जातियों में डोम ही मुख्यतया इधर होते हैं वैसे चमार व थार आदि भी कहीं कहीं मिलते हैं। वैश्यों की संख्या बहुत ही कम है। मैदान से आये हुवे वैश्यों के ही वंशज यहां मिलते हैं। अधिकांश मुसलमान काशीपुर और तराई की ओर रहते हैं। कहीं कहीं बहुत अल्प संख्यक ईसाई और सिख भी मिल जाते हैं।

अल्मोड़ा की सामाजिक रीति और रूढ़िया भी विचित्र ही हैं। दो विवाह करना अथवा एक ही समय में दो स्त्रियें रखना यहां आपत्ति जनक नहीं समझा जाता। खसियाओं में विवाह क्रय-विक्रय कर्म है और इसमें धार्मिक पवित्रता का बन्धन संयोजित नहीं किया जाता। बहु-विवाह यहां प्राय: प्रचलित नहीं है। पिता कन्यादान के बदले में अपनी पुत्री पर धन स्वीकार कर लेता है। पति की मृत्यु के बाद स्त्री प्राय: पति के अनुज को प्राप्त होती है। इस प्रकार इस युगल से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह न्याय संगत और नियमानुकूल मानी जाती है।

असकोट के आस पास जंगली आदमी भी होते हैं। यह भ्रमक लोग हैं और अपने को प्राचीन असकोट के रजवार राजवंश का बतलाते हैं। यह कृषि भी करते हैं और वन पशु तथा जल जन्तुओं की हिंसा करके भी पेट भर लेते हैं। इनकी अपनी ही भाषा है और अपने ही रीति रिवाज। यह प्रायः अर्द्ध-नग्न-काल के समान घूमते हुए कभी कभी बड़े भयानक लगते हैं। इनकी धार्मिक क्रियायें और रीतियां भिन्न ही थीं परन्तु अब यह भी हिन्दू धर्मानुयायी हो गये हैं, तथापि अपने मुख्य आराध्य देव बाघनाथ की अब भी उपासना करते हैं।

साधारणतः यहां के लोगों के जीवन में सत्य और सरलता का विशेष प्रयोग है। आधुनिक समय में भी यहां, लोग घरों में ताला लगाना नहीं जानते। ग्रामों में प्रायः किसी प्रकार की भी भोजन सामग्री बेचना अनुचित समझा जाता है। ग्रामीण तो पेटभर अन्न उत्पन्न कर ही लेते हैं परन्तु उनमें भी शाकाहारी यहां कोई बिरला ही मिलता है। वस्त्रों का अभाव और कष्ट सभी अनुभव करते हैं। यहां के लोग ऊन कातते और उस से कुछ पंखियां आदि मोटे झोटे कपड़े बुन लेते हैं। सूती कपड़ा तो यहां तनिक भी नहीं मिलता।

कुमायूँ में ग्रामीणों की अनभिज्ञता, उनकी अशिक्षा, सब प्रकार के सुधार और आन्दोलन के प्रति उदासीनता

बाल विवाह और छुआछूत की प्रचलित कुरीतियों पर दृढ़ आरूढ़ता तथा अर्द्धनग्न, अर्द्धपेट, आत्ममग्न ही कृषि आदि में प्रातःकाल से सायंकाल तक श्रमसंलग्नता आदि विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं। परन्तु नागरिकों का जीवन पाश्चात्य रङ्ग ढङ्ग तथा सभ्यता में ढलता हुआ सा प्रतीत होता है। भारत में पिछले कतिपय वर्षों में जो महाक्रान्तिकारी और उथल पुथल मचा देने वाली आन्दोलनों की लहरें आयी हैं उनका कुछ प्रभाव कुमायूँ प्रदेश में भी पड़ा हुआ स्पष्ट जान पड़ता है।

ग्रामीणों में नव जीवन और नव जागृति के लक्षण प्रतीत होते हैं। देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की लहरें भी हृदयों में हिलोरें लेती हुई ज्ञात होती हैं। लोग अपनी दीन हीन दशा पर दृष्टिपात करते हुए आत्म चिंतन भी करने लगे हैं। अब उन्हें अपने दोष और कुरीतियां भी अनुभव होने लगी हैं। उनमें आगे बढ़ने का साहस और सुधार करने की भावना अंकुरित होने लगी है। यह दशा पर्वतीय ग्रामों की ही नहीं परन्तु जङ्गलों और खेतों में एक दो झोंपड़ी डालकर रहने वाले गृहस्थियों की भी है।

नागरिकों के जीवन में भी बड़ा परिवर्तन है। वे उन्नति की ओर अग्रसर होते जान पड़ते हैं। उनके हृदयों में देश प्रेम की भावनायें दृढ़ होती जारही हैं। परतंत्रता

के वायुमण्डल और दासत्व मनोवृत्ति के क्षेत्र के मुख्य केन्द्र नैनीताल नगर में भी स्वतंत्रता की लहर प्रबल प्रवाह से बहती हुई दृष्टि गोचर होती है। अलमोड़ा में भी स्वदेश और स्वदेशी के प्रति अनन्य श्रद्धा संस्थापित है।

संक्षेप में भारत के एक कोने में पड़े हुए प्रान्त में भी समाचार पत्रों और व्याख्यानों द्वारा एक विचित्र परिवर्तन होगया है। कुमायूँ के निवासी भी आज अपने कर्तव्य से विमुख नहीं और न वह अपने अधिकारों से ही अनभिज्ञ हैं।

---

५

## संकटाकीर्ण पथ

"कीर्तिशिखर का मार्ग आपत्ति के गर्त में है।" दोपहर का समय था। मार्ग बहुत कठिन तथा भयानक था। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता था कि यहां से कैलाश का कठिन पथ प्रारम्भ होता है। धारचुला से लगभग दो मील चलने पर तपोवन आश्रम में श्री रूमादेवी का अतिथि सत्कार, आने वाले कठिन मार्ग के लिये साहस और नवजीवन का संचार करता है। यह देवी बहुत सुशीला और प्रेममयी प्रतीत होती हैं। समाज सेवा तथा यात्रियों की सुविधा और सत्कार ही इस समय देवी जी का मुख्य धर्म है। यह देवी गत १५

वर्षों से इस स्थान पर रह कर यह कार्य करती हैं । यह बहुत काल से विधवा हैं और इस कर्म में अपने हृदय को सन्तोष तथा सान्त्वना देती हैं ।

मार्ग में फिसलन अत्यधिक है । चलने पर सड़क के पत्थर टूट कर नीचे को गिरते हैं। साथ ही ऊपर से पहाड़ के टुकड़ों का टूट कर गिरने का भय सदैव बना रहता है। इस प्रकार यहां कुछ भी निश्चय नहीं कि किस समय पहाड़ गिर जावे और कौन चलता फिरता यात्री किस पत्थर की तरह जीवित जाग्रत मूर्ति से एक मृत शव में परिणत हो जावे। वास्तव में यहां प्रत्येक पत्थर के अन्तःस्तल में मृत्यु का समावेश है और उसका प्रकट होना भी किसी विचित्र शक्ति के अधीन अथवा अनियन्त्रित ही है। इस प्रकार पग पग पर जीवन की घटिकायें गिनते हुए, और दो मील की अत्यन्त कठिन चढ़ाई चढ़ कर, सायंकाल को धारचुला से दस मील दूर खेला नामक स्थान पर—जिसकी ऊंचाई ५५०० फ़ीट है, जहां पर एक दो दूकानें तथा डाक-ख़ाना भी है, रात्रि को विश्राम किया। खेला से दो मील सीधी उतराई कर एक पहाड़ी नदी को पार करते हैं। इसका प्रवाह तीव्र है और जल विशेष शीतल है। इस वेगशालिनी और कोलाहलमयी नदी के पुल पर चलना हृदय को भयभीत और शरीर को कम्पित कर देता है। नदी पार हो, तीन मील कठिन चढ़ाई कर पांगु नामक ग्राम के प्राइमरी स्कूल

में सुन्दर विश्राम स्थान है। यहां का भूटिया अध्यापक बहुत सुशील तथा सज्जन है। यह भूटिया राजपूतों की बस्ती है, जो ऊन का व्यापार तथा खेती करते हैं। ये मंगोलियन जाति के हिंदू है। इनका रंग गोरा, मुंह चौड़ा और नाक चपटी है। क़द के छोटे और शरीर के पुष्ट होते हैं। इनकी बस्ती धारचुला से प्रारम्भ होती है। और यहां तो सब इन्हीं का देश है। इन लोगों का भूटिया नाम किन किन कारणों से पड़ा उन सब का तो सही सही व्यौरा मिलना कठिन है परन्तु यह कहा जाता है कि "भोट" शब्द "बोड़" शब्द से निकला है जिसका शब्दार्थ तिब्बत है। कुमायूँ के लोग इस भाग को भोट कहते थे और इसी कारण यहां के निवासी भूटिया कहलाते हैं। यद्यपि यह नाम उनको रुचिकर नहीं है। इनकी बोलचाल भी कुमायूँ के लोगों से भिन्न ही है।

लगभग दो मील चढ़ाई कर ६००० फ़ीट ऊंचे शिखर तिथल पर पहुंचते हैं। यहां जल अति शीतल और वायु शरीर को कम्पित कर देने वाली है। अलमोड़ा से चलकर यह स्थान सबसे ज्यादा शीतल है। इस स्थान से साधारणतः डेढ़ मील उतराई कर अद्धांग व तेजा नामक ग्राम में होते हुए सिरखा में विश्राम करते हैं। यह सब ही ग्राम बड़े समृद्धिशाली ज्ञात होते हैं। यह सब भूटियों के ही निवास गृह हैं। यहां के भवन सुनिर्मित और दो दो

मंज़िल के हैं। यहां गेहूं आदि की कृषि होती है। दूध, दही, आलू आदि सभी पदार्थ सुगमता और अधिकता से प्राप्त हो जाते हैं। जल-वायु मधुर और शीतल है। ग्रामों में एक प्रकार का जीवन और जाग्रति सी दिखाई पड़ती है। प्राइमरी स्कूल यहां पर सुखदायक अतिथिगृह हैं। यद्यपि यहां कोई दूकान नहीं तथापि ग्रामीणों द्वारा सभी सामग्रियाँ प्राप्त हो जाती हैं। हमारे विश्रामग्रह पर सायंकाल के समय ग्रामीण नरनारी, युवा, वृद्ध और बालकों का समुदाय, एक आनन्द का दृश्य था। यह लोग बड़े उत्साह और उत्कण्ठा से नवागन्तुकों का निरीक्षण और स्वागत करते हैं।

सिरखा से दो मील उतर कर हमारा मार्ग बांझ के भयानक वन में से होकर जाता है। यह वन ढाई मील चढ़ाई और तीन मील उतराई इस प्रकार साढ़े पांच मील पर्य्यन्त हमारे मार्ग में आता है। यहां पर रीछ आदि भयानक पशुओं का विशेष भय रहता है। इसके पश्चात् मार्ग कुछ सरलसा है। पांच मील के अन्तर से आलागार नामक ग्राम में होते हुए जुपती पहुँचे। यहां की ऊंचाई ८००० फीट है। इस स्थान पर सिरखा से पहुंचना मनुष्य को श्रान्त कर देता है। इस स्थान की छोटी दूकान और उसका छायादार सहन इस मार्ग पर सुन्दर विश्राम स्थान है।

इससे आगे मार्ग बहुत कठिन और भयानक है। चढ़ाई और उतराई के अतिरिक्त स्थान स्थान पर मार्ग टूट

टूट कर गिरता है और मिट्टी की फिसलन से चलते समय पैर रपटता है। इसके साथ ही साथ ऊपर से पहाड़ के पत्थर गिरने का भय भी निरन्तर बना ही रहता है। यहां एक एक पग संभल संभल कर रखना होता है। यही प्रसिद्ध नृपाणी वाला मार्ग है जिसमें पहले यात्रियों को घास के तिनके पकड़ पकड़ कर, प्यास से व्याकुल शुष्क कण्ठ, जैसे तैसे अपने जीवन की रक्षा करते हुए इस मार्ग से पार होना पड़ता था परन्तु अब नदी के तट से होकर मार्ग तनिक सरल सा हो गया है। इस मार्ग में चलते चलते मृत्यु नेत्रों के सम्मुख ताण्डव नृत्य करने लगती है। इसी कारण किसी यात्री ने इस पथ के अन्त 'मालपा' के समीप नदी तट पर, श्रान्त हो, बैठ कर, शान्त मन से बड़े ही भावोत्पादक शब्दों में लिखा है :—

'बाद मरने के मेरी लाश को मधुवन में गढ़वा देना' आदि और इसी के सामने इस भावार्थ का वाक्य भी अंकित है कि "कीर्ति-मार्ग श्मशान से होकर जाता है"।

'Path to glory lies through grave'

यह मार्ग वेग से बहती हुई नदी के किनारे किनारे चलता है। यहां नदी का गंभीर स्वर एक रस निरन्तर कर्ण छिद्रों पर इस अद्‌भुत रूप में होता है कि यात्री निद्रित सा प्रतीत होने लगता है। इसके तटस्थ ऊंची ऊंची भयावनी पहाड़ी चट्टानों का दृश्य संकट के भय को द्विगुणित कर

देता है। मार्ग में चम्पा नामक एक झील है जिसका जल लगभग १०० फीट की ऊंचाई से वेगशालिनी दुग्ध धारा के समान श्वेत रूप में बड़े ही उच्च स्वर से गिरता है। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य में भी परम रमणीय है। यहां पर पर्वत भी कुछ हरा भरा सा है। वायु बहुत शीतल और सुहावनी है। जल भी मधुर, स्वादिष्ट और हिमवत शीतल है। यदि कहीं बैठ कर नदी के उछलते कूदते प्रवाह को उसके एकरस, उच्चस्वरनाद को देखें और सुनें तो मनुष्य मूर्तिवत स्थित रह जाते हैं। ऊंचे ऊंचे पर्वतीय शिखरों से जल का अनवरत झरना श्वेत पुष्प-वर्षा सा तथा दुग्धफेन सा प्रतीत होता है। कहीं कहीं कृष्णाम्बरी पर्वतों में जमी हुई हिम स्वर्णाभूषण के समान प्रकाशित होती है। इस प्रकार यह भयपूर्ण सुहावना मार्ग मालपा पर समाप्त हो जाता है।

मालपा भूटियों की गन्दगी का जीवित जागृत उदाहरण है। यहां पर मक्खियां और मच्छर बहुत हैं और भूटियों की सर्व सम्पत्ति भेड़-बकरियों के मल-मूत्र की गन्ध से इस स्थान का चप्पा चप्पा दुर्वासित है। यहां की मिट्टी भी काली है। इस कारण इधर के चलते फिरते आदमियों की स्वच्छता भी दूषित हो जाती है। जहां इस स्थान पर ईश्वरीय सौन्दर्य का भण्डार है वहां यह मानव वृत्ति की दुष्कृति और मलीनता का भी कोष है।

मालपा से बुधी का मार्ग कुछ सरल सा है और यह सात मील का चलना विशेष कष्टकर नहीं होता। मार्ग में चिरकाल संगिनी काली नदी जो मध्य में छुट गई थी, फिर बड़े तीव्र प्रवाह से प्रकट होती है। इसे देखकर प्रतीत होता है कि यह शीघ्र ही कहीं छिपने के लिए भागी जाती है। इस मार्ग में जहां तहां गगन-स्पर्शी पर्वतीय शिखाओं पर श्वेत हिम बड़े ही आकर्षक रूप में सुशोभित है। बुधी से तीन मील सीधी खड़ी चढ़ाई चढ़कर पहाड़ की चोटी पर पहुँचते हैं। इस स्थान पर देवदारु के वृक्षों के सुन्दर वन हैं। इनमें शीतल मन्द वायु बहती हुई हृदय को आनन्द देती है। इस स्थान पर बड़ी सुहावनी हरियाली है और नाना प्रकार के पत्र और पुष्पों से सुशोभित यह पर्वतीय घाटी बसंत समान हरी-भरी और मनोहर लगती है। यहां से शनैः शनैः उतरते हुए गर्ब्यांग को सड़क जाती है जिसके मार्ग में यत्र तत्र बर्फ के पुल पड़ते हैं, इन पर चलना भय पूर्ण है। इनके नीचे बहने वाले पर्वतीय नाले बर्फ को बहा भी ले जाते हैं, जिसके साथ मनुष्य का भी बह जाना भी कुछ असंभव नहीं। यहां रंग बिरंगे पुष्पों के साथ साथ अनेक रंग की मृत्तिका भी हैं। कृष्ण, पीत, नील, श्वेत वर्ण तो साधारणतः देख ही पड़ते हैं। यह स्थान शीतकाल में सर्वदा हिमाच्छादित ही रहता है। इस कारण यहां के वृक्ष आदि भी हिम-शीत के सताये हुए से जान पड़ते हैं। गर्ब्यांग

चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ एक ऐसा स्थान है जहां से सब ओर के दृश्य स्पष्ट और सरल रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यहां कई स्थानों पर तो हिमाच्छादित पर्वतों का दृश्य बहुत ही विशाल और सुहावना है।

गर्व्यांग ब्रिटिश राज्य की सीमा पर अन्तिम बस्ती है। इस स्थान की ऊँचाई दस हजार फीट है। यहां का इस समय का शीत भी मैदान के शीततलम मास की तुलना करता है। यहां प्रायः भूटिया लोग रहते हैं, जिनके मुख ठंड से झुलसे हुए काले काले से लगते हैं। साधारणतः यहां के लोग समृद्धिशाली हैं। ऊन और खेती ही मुख्य व्यवसाय है। यह घाटी अत्यन्त उपजाऊ है। शाक आदि की भी अधिकता है। यहां की बस्ती काश्मीर नैपाल और तिब्बत के निवासियों से मिश्रित है। तिब्बती लोग प्रायः तिब्बत यात्रा में कुली और पथ-प्रदर्शक का कार्य करते हैं।

गर्व्यांग से सब मानवी लीला और कला का अन्त हो जाता है। यहां मनुष्य-सभ्यता, शासन, रहन सहन और भोजन भवन आदि सभी सुव्यवस्थित अवस्था का अन्त है। तात्पर्य गर्व्यांग एक सृष्टि की सीमा के अन्त और दूसरी के प्रारम्भ के मध्यस्थ है। यहां से आगे भ्रमक जीवन आरम्भ होता है, जहां पर न भोजन, न भवन और न अन्य किसी प्रकार का जीवन का सहारा ही है। वहां तो अपने ही डेरे,

अपना ही भोजन और अपने ही वस्त्र सदैव साथ रखने पड़ते हैं। गर्व्यांग से ही तिब्बत और कैलाश की यात्रा के लिये अन्तिम प्रबन्ध करना पड़ता है। जहां पर नागरिक जीवन को अन्तिम नमस्कार कर प्रकृति की गोद में केवल वन्य जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है।

इस यात्रा का प्रारम्भिक भाग कठिन और कष्टकर प्रतीत हुवा। मध्य में यह संकटाकीर्ण और भयंकर है और इसका अन्तिम अध्याय वास्तव में मृत्यु मुख में प्रवेश करना है।

---

६

# भोट देश में

जिला अल्मोड़े में भूटियों की सबसे अधिक संख्या है। भारत को तिब्बत से पृथक करने वाले हिमालय के तट पर भूटिया जाति के मनुष्य रहते हैं। कुमायूं, और तिब्बत के रहने वाले पर्वतीय लोगों को भोट कहते हैं। यह देश तिब्बत की सीमा और उत्तर में हिमाच्छादित उच्च पर्वतीय शिखरों के मध्यस्थ है। जिला अल्मोड़े के भूटिया, हिमाच्छादित पर्वतों के दोनों ओर स्थित तीनों घाटियों में रहते हैं। भूटिया लोग तिब्बती तट के समानान्तर और परस्पर अभिन्न रूप से बसे हुए हैं। यह भाग पूर्व में नैपाल और पश्चिम में टिहरी राज्य से

सीमित है तिब्बत के जाने वाली प्रत्येक घाटी के सहारे इनका निवास स्थान है। हमारे मार्ग में यह लोग पांगु स्थान स्थान से लेकर बृटिश राज्य की सीमा के अन्त तक बसे हुए हैं। इनके रीति रिवाज, स्वभाव और भाषा आदि में इतने अधिक भेद हैं कि इनका परस्पर सम्मिश्रण अत्यन्त दुष्कर है। बहुत से लोग तो अपने पूर्वजों तक की भाषा भूल गये और अपने पड़ौसी खसियाओं के समान ही भाषा का प्रयोग करते हैं। इस पर भी पांच प्रकार की भिन्न भिन्न बोलियां इन में प्रयोग में आती हैं और एक दूसरे परस्पर इनको नहीं समझ पाते।

यद्यपि इनके रीति रिवाज बिल्कुल विचित्र हैं तथापि उनसे यह तो स्पष्ट प्रगट होता है कि यह आदि से हिन्दू ही हैं। यह लोग पूर्णतया हृष्ट पुष्ट हैं। वास्तव में यह मंगोल जाति के ज्ञात होते हैं। इनका रंग पीला, चेहरा गोल, नाक चपटी, और क़द छोटा होता है। गब्यांग आदि स्थान के समीप शीत विशेष होने से इन का पीतवर्ण कालिमा मिश्रित हो जाता है। इनमें शिक्षा का तो प्रायः अभाव ही है। पांगु सिरखा, बुधी, और गब्यांग आदि स्थानों पर प्रारम्भिक पाठशालायें स्थापित होगयी हैं। जिनमें बालक और बालि-कायें सभी एक साथ शिक्षा पाते हैं। राजपूत और डोमरा, भूटियों की दो जातियां हैं। इनमें ब्राह्मणों का नाम भी नहीं है। हां कुछ दक्षिण से जाकर अवश्य बस गये हैं। जथौरे,

शाके या रावत और दामी भूटिया इन लोगों के मुख्य समुदाय हैं। यह कोट, पायजामा और लम्बा चोगा पहिनते हैं। इन की स्त्रियां कोट, कुर्ता, जाकट, लहँगा और लम्बा ओढ़ना प्रयोग करती हैं। स्त्रियां प्रायः परदा नहीं करतीं। ये अपने कान और गले में विचित्र ढंग के चांदी के आभूषण धारण करतीं हैं। इनका भोजन तिब्बत निवासियों से अधिक उत्तम होता है। उनके गंदे रहने और अशुद्ध आदतों के कारण इनमें से बहुत से लोग उनके साथ तक भोजन नहीं करते। कुछ लोग निरामिष आहारी हैं।

यहां के राजपूत लोग डोमों के साथ भोजन नहीं करते। यद्यपि गौ-घातक तिब्बतियों के साथ निःसंकोच भोजन करते हैं। जुहारी रावत लोग तिब्बतियों के साथ चाय मात्र पीते हैं। इनकी चाय भी विचित्र रूप से बनती है जिसमें नमक मक्खन और सत्तू के अतिरिक्त मांस भी सम्मलित कर देते हैं। इस प्रकार तिब्बतियों के साथ भोजन न करने का उनका कथन मिथ्या ही है। जुहार में स्त्रियां पुरुषों के पश्चात और दारमा में उनके साथ भोजन करती हैं। मदिरा का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है जिसको 'जाम' कहते हैं। स्वच्छ की हुई 'जाम' को दारू कहा जाता है। यह दोनों ही जौ, गेंहू, चावल, आदि अन्नों से बनती हैं। इस ओर मदिरा का अप्रतिबन्ध-प्रयोग सरकारी नियन्त्रण या कर न होने के कारण है।

तिब्बती लोगों से इनके सम्बन्ध व्यापार में सहायक हैं। कारण वह लोग ऐसे मनुष्यों से किसी प्रकार का भी व्यवहार करना उचित नहीं समझते जो उनके साथ जलपान करने में संकोच करते हैं। भूटिया लोग कठिनता अथवा सरलता से तिब्बतियों की बोली समझ लेते हैं। पूर्वीय भोट की स्त्रियां बड़ी स्वतन्त्र हैं। वह अपना पति स्वयं वरती हैं। और विवाह करना उनके लिये अनिवार्य नहीं। जुहार के अर्द्ध हिन्दू भूटिया स्त्री और पुरुष सभी विवाहित हैं। कारण उनके विवाह स्वेच्छा पर नहीं वरन् उनके माता पिता के आधीन हैं। दारमा में वर और कन्या जब तक परिपक्व अवस्था को प्राप्त नहीं होते तब तक उनका विवाह नहीं किया जाता। बहुत से पुरुष और स्त्रियां अविवाहित भी रह जाते हैं।

जुहार में प्रायः पुरुष एक से अधिक भी विवाह कर लेते हैं। पूर्वीय भोट में स्त्री और पुरुषों में बहुत स्नेह पूर्ण व्यवहार तथा समानता है। प्रत्येक ग्राम में एक मोदगृह (club), जिसे रामवांग कहते हैं, होता है जहां पर पुरुष और स्त्री स्वतन्त्रता से एकत्रित हो गायन, वाद, नृत्य आदि से मोद करते हैं। बड़े बड़े ग्रामों में एक से अधिक भी मोदगृह होते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य विवाह योजना कराना है इस कारण वहां वे ही स्त्री तथा पुरुष जाते हैं जिनका परस्पर विवाह संयोग हो सकता है। यहां युवक और युवतियां बे रोक टोक

परस्पर मिलते जुलते हैं। कन्याओं को भी इतनी स्वतन्त्रता है कि यदि उन्हें उपयुक्त वर न मिले तो अविवाहित भी रह सकें। इस प्रकार की अविवाहिता प्रत्येक ग्राम में मिलती हैं। विवाह का प्रस्ताव वर की ओर से उसके मित्र आदि एक वस्त्र में पांच से सौ रुपये तक बांध कर कन्या को भेंट करते हुए उपस्थित करते हैं। यह भेंट प्रायः कन्या की सहेलियों को दी जाती है जिनका उस पर विशेष प्रभाव और स्नेह होता है। कन्या अपने कुटुम्बी जनों के परामर्श से 'हां' अथवा 'ना' में उत्तर दे देती है। यदि वह संयोग उचित समझा जाता है तो वर का पुरस्कार स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा वापस लौटा दिया जाता है। कन्या को वर और उसके साथी रामवांग से ही ले जाते हैं। तदुपरान्त विवाह संस्कार वर के घर पर ही होता है। विधवा विवाह कन्या विवाह के समान धूम धाम से नहीं किया जाता। विधवायें प्रायः दूसरे पुरुष के साथ जाकर रहने लगती हैं। यद्यपि उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया जाता तथापि समाज में उनका सत्कार भी नहीं होता। विवाहिता को तिलांजलि ( Divorce ) देने की भी प्रथा विद्यमान है। केवल पुरुष के मौखिक वचन पर ही स्त्री का त्याग किया जा सकता है। स्त्री यदि चाहे तो त्यक्त होने के पश्चात् किसी अन्य पुरुष के साथ रह सकती है। अन्य से संयोग यद्यपि विवाह नहीं समझा जाता तथापि पुरुष

उसके पूर्व पति को धन दे तो उस स्त्री को स्वतन्त्रता कराई जा सकती है। पति स्त्री को त्यागते समय उसको एक श्वेत वस्त्र प्रदान करता है जिसका अर्थ होता है कि वस्त्र के समान उसका चरित्र निर्मल और दूसरा विवाह करना नियमानुकूल है। इस प्रकार के वस्त्रदान बिना, स्त्री त्याग किया अपूर्ण ही मानी जाती है। कोई भी पुरुष यदि दूसरे की स्त्री के साथ भागता है तो उसे कठोर दंड दिया जाता है। इस प्रकार पूर्वीय भूटिया, पश्चिमीय भूटियाओं से पूर्णतया भिन्न हैं। पश्चिमीय भूटिया, लोगों में परदे की प्रथा अब तक प्रचलित है।

दूरस्थ घाटियों में रहने वाले भूटिया अब भी अपने धर्म और रीति रिवाज में बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में पाये जाते हैं। अपनी व्यापार वृद्धि के लिये यह गोवला नामक देवता को तथा क्यागरंगचुम जो कि पुरुष और स्त्री, एक ही में संयुक्त स्त्री, पुरुष है, पूजा करते हैं। पर्वतीय लोग रोगों में बकरे की बलि चढ़ाते हैं। इस प्रकार अपनी अपनी मनोकामना सिद्धि के लिये वह अनेक दैत्यों और अनेक देवताओं की पूजा करते हैं। प्रत्येक ग्राम का एक विशेष देवता है। गोवला सर्वत्र ही पूज्य है। गर्ब्यांङ्ग बुधी और चांगरु ग्रामों में नागजुंग को महाशक्तिशाली आराध्य-देव मानते हैं। दारमा भूटिया तिब्बत के बौद्ध मठों में भी

पूजा पाठ करते हैं और वहां के दैत्य देवताओं में भी श्रद्धा रखते हैं।

भोट, हिमालय से सीमित और सुरक्षित होने के कारण तिब्बत और भारत दोनों ही के धार्मिक प्रवाहों से वंचित हैं। न तो वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को ही मानते और न हिन्दू धर्म के ही नियमों में विश्वास करते हैं। इन में तिब्बत में प्रचलित दुराचार तथा दानव पूजा के चिह्न तक भी नहीं मिलते और ना ही वे हिन्दुओं के समान मूर्त्ति पूजा करते हैं। हां, वह हिन्दुओं की लिङ्ग पूजा में विश्वास रखते हैं और यत्र तत्र पत्थरों के ढेर इनके स्थानिक देवताओं के द्योतक हैं। पूर्वीय भूटिया लोग अपने देवालय, ग्राम से बाहर एकान्त स्थान में बनाते हैं, जिनको 'संथान' कहते हैं। यह लोग स्वयं ही देव पूजा कर लेते हैं, कोई पुजारी नहीं रखते। पश्चमीय भूटिया अवश्य ब्राह्मण को पूजा करने के लिये नियुक्त करते हैं। साधारणतः रोटी चावल और दलांग आदि पदार्थ बनाकर मदिरा के साथ देवता की भेंट चढ़ाते हैं। दलांग में सत्तू विशेष रूप से होता है जिसको एक आटे के बर्तन में, जो डेढ़ फुट ऊंचा और जिसकी पेंदी चौड़ी और मुंह छोटा होता है, चला कर विशेष रूप से बनाते हैं। इस पात्र का प्रत्येक धार्मिक तथा सामाजिक कर्म में प्रधान स्थान है। विवाह संस्कार में तो इसका परम प्रधान स्थान है। वर कन्या दलांग पात्र को

तोड़कर खाते हैं। भेड़ और बकरियों की बलि भी लिङ्ग के आगे चढ़ाते हैं। प्रत्येक रोग को यह किसी न किसी भूत, प्रेत आदि के नाम से सम्बोधित करते हैं और जिस घर में कोई व्यक्ति भयंकर रोग से पीड़ित हो जाता है उस के द्वार पर कुल्हाड़ी रखते हैं। इनका भूत प्रेत आदि में बहुत विश्वास है। यह प्रत्येक झाड़ी और चट्टान में किसी न किसी भूत का निवास मानते हैं। यह बड़े अन्ध विश्वासी होते हैं। सायंकाल की धूलि में भी यह किसी प्रेतात्मा का प्रकोप देखते हैं और इनके लिये प्रत्येक पर्वतीय पत्थर के अन्तर्गत कोई न कोई भूत या प्रेत छिपा हुआ है। यह मृतक के शव को गाढ़ते हैं और उसके कपाल को संभाल कर पवित्र मान सरोवर या गंगा में बहाने के लिये रख लेते हैं।

यह लोग बहुत समृद्धिशाली हैं। कृषि और ऊन का व्यापार ही इन में मुख्य धनोपार्जन का साधन है। इनके गृह सर्वसम्पन्न और आनन्द निमग्न दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक घर में प्रायः निरन्तर अग्नि जलती रहती है। इनके घर के मुख्य भाग में अग्निकुंड पारसियों के पूज्य अग्निदेव की तरह प्रज्वलित रहते हैं। इनका भोजन आदि सब इसी पर बनाया जाता है। यहां स्त्री पुरुष सब प्रायः एकत्रित हो उठते बैठते हैं। अतिथि सत्कार बहुत उदार है। प्रायः आगन्तुक अतिथि को चाय की भेंट तो साधारण सी बात है। इनकी चाय भी भिन्न ही प्रकार से बनती है। बड़े पात्र में

जल गरम करके उस में चाय डाल देते हैं। उसके पश्चात् ओखली के समान एक काठ के लगभग चार फ़ुट लम्बे और एक फ़ुट गोलाकार बर्तन में मक्खन डाल कर चाय-जल को घर की स्त्री मूसल समान एक काष्ठ के डंडे से खूब फेंटती हैं और फिर नमक डाल कर चाय के पात्र में रख कर चांदी के सुन्दर प्यालों में सब को चाय देती है। चाय में कभी-कभी नमक के साथ मीठा भी डाल देती हैं। यह नमकीन पर मीठी चाय दूध के स्थान में मक्खन से प्रयुक्त बहुत पी जाती है। फापड़ उस देश में उत्पन्न होने वाला अन्न है। यह वहां का मोटा अन्न माना जाता है; इसका बाजरे के समान वर्ण होता। इसकी रोटी या चीले नमक या मीठे से खाते हैं। यह चीले कुछ कड़वे लगते हैं परन्तु यही इनका विशेष भोजन है। इसी प्रकार यह लोग अग्नि के समीप आनन्द से अपने घर में कालयापन करते हैं।

भूटिया लोग बोझ ढोने के काम में आते हैं। अपने व्यापार को उन्नत रखने के लिये यह तिब्बत के लोगों से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। कारण,तिब्बती लोग, जो उन से खान पान नहीं रखते उनसे व्यापार रखने में हिचकते हैं। भूटिया निपुण व्यापारी और कृषक होते हैं। इनके साथ इनकी स्त्रियां भी खेतों में काम करती हैं। ऊन का व्यापार इनका प्रधान कार्य है। इन लोगों के कठिन परिश्रम ही के फल स्वरूप ऊन के व्यापार पर इनका पूर्ण आधिपत्य

है। इनको अपने इस प्रभुत्व का कुछ गर्व भी हो चला है परन्तु इनका यह आधिपत्य उसी समय तक स्थित है जब तक कि भेड़ और बकरियों के स्थान पर सुधरी हुई सड़कों पर घोड़े और खिच्चर आदि नहीं चलने लगते।

---

## मृत्यु के मुख में आनन्द

७

### मार्ग विहीन कैलाश पथ

१० जुलाई को हम लोग अपने दल बल सहित सब प्रकार से सुसज्जित और सभी आवश्यक सामग्रियों से सम्पन्न हो मार्ग विहीन कैलाश पथ पर अग्रसर हुए। हमारे दल में पथ-प्रदर्शक सशस्त्र-संरक्षक तथा सवारी के घोड़े और भारवाहक झब्बू (तिब्बती बैल) के सेवक आदि साथ थे। रास्ते में काली नदी के किनारे किनारे पहिले नैपाल की सीमा में पुनः बृटिश राज्य के अन्तर्गत आठ मील चलकर काला पानी नामक पड़ाव पर आकर डेरे गाड़े। मार्ग में कोई सड़क नहीं। यत्र तत्र चीड़ और देवदारु के वृक्ष हैं।

पर्वत सब शुष्क और हिम से झुलसे हुए हैं। कही कहीं पर्वतीय शिखरों पर हिम दर्शन भी हो जाता है। गर्ब्यांग से दो मील की दूरी पर चांगरु और ढाई पर कनवा नामक ग्राम नैपाल की सीमा में आते हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कोई भी बस्ती अथवा व्यक्ति दृष्टिगत नहीं होता। इस प्रकार निर्जन वन में गंभीर विचारों में निमग्न-मन, घोड़े की पीठ पर शनैः शनैः पथ प्रदर्शकों के पीछे लगे हुए हम लोग कालेपानी पहुंचे। यहीं पहाड़ की जड़ से काली नदी का उद्गम स्थान माना जाता है परन्तु यह बात सन्देह रहित नहीं। कारण, काली नदी का यह भाग उसकी बहुत छोटी सहायक नदी के समान लगता है और उसकी मुख्य धारा जो इससे कहीं विशाल, मटली और वेगवती है वह कुठीयांक्ती नाम से सम्बोधित की जाती है जिसका उद्गम व्यास नदी के ऊपरी भाग में मछांग घाटी की तरहटी से—जो कि तिब्बत और बृटिश राज्य की सीमा पर है—बताया जाता है। काली नदी का वह भाग शीतकाल में हिमवत जम जाता है। काले पानी पर वह दोनों धारायें मिल कर तीव्र वेग से गर्ब्यांग होती हुई धोली नदी के संगम पर पहुंचती हैं जहां इनका प्रवाह बहुत तीव्र है। अपने उद्गम से ७५ मील चलकर जोलजीवी स्थान पर वह गोरी गंगा से संयोग करती हुई पाचेश्वर में जाकर अपनी सहायक सरयू नदी से भेंट करती है। इस प्रकार अनेकों

महानदियों की सहायता से स्वयं एक बृहत नदी बनकर पर्वतीय प्रदेश का त्याग कर यह भारत की सम्पन्न भूमि में प्रवेश कर सर्व प्रथम शारदा, पुनः सरयू और अन्त को बलिया जिले में भागीरथी के संगम पर घाघरा नाम से सम्बोधित की जाती है।

काला पानी बड़ा ही रमणीक स्थान है इसकी ऊंचाई लगभग १२००० फीट है। यहां पर वायु वेग से बहती है। जल भी शीतल और स्वादिष्ट लगता है। यहां नदी तट पर पहाड़ के सहारे थोड़ा समतल मैदान है जिस पर भली प्रकार से हमारे डेरे आदि लग सके। यहां ईंधन भी सुलभ है। इस प्रकार यह स्थान आनन्ददायी, सुखकर और सुन्दर तथा अत्यन्त मनोमोहक है। प्रकृति माता के शान्त साम्राज्य में यहां किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप करता प्रतीत नहीं होता। उच्चतम पर्वतीय शिखरों से घिरे हुए दो शान्त और वेगवान पर्वतीय नदियों के संगम पर, हमने अपने विश्राम का प्रबन्ध किया। अपने सर्व दल-बल की चहल पहल ने वास्तव में इस निस्तब्ध और निर्जन जंगल को मंगलमय कर दिया। हृदय में एक नवस्फूर्ति और परम सुखमय शांति प्रतीत होने लगी।

अब हमारे संगी और सखा निश्चित हैं। संख्या सीमित है। अपने साथियों के अतिरिक्त सेवक और पथ प्रदर्शक ही हमारी जन संख्या की वृद्धि करते हैं। इस

प्रकार अब सभी वस्तुएं परिमित और एक विशेष अवधि से बाधित हैं। बस अब तो नियम से एक रस नित्य प्रति भोजन, बसन, डेरों का रहन सहन, सब अटल रूप से निश्चित ही हैं। यहां पर मायावती से आये हुए तीन चार सन्यासी सखाओं के विशेष संयोग ने हमारी संख्या की वृद्धि करदी। इस के पश्चात तो सर्वत्र ही हमारी संख्या निर्धारित रही और अपनी छोटी सी मंडली में ही सुख और संतोष मानना पड़ा।

काले पानी से चलकर वृक्षों का भी संग छूट जाता है। अब तो केवल दोनों ओर के ऊंचे ऊंचे पहाड़ ही अपने संरक्षक और सखा रूप में साथ रहते हैं। इन पर्वतों पर, जहां कहीं कहीं बर्फ के धब्बे हैं वहां पर घास के भी छोटे छोटे गुच्छे दीख पड़ते हैं। किसी किसी स्थान पर पर्वतीय पत्थरों के ऊंचे-ऊंचे अम्बार हैं। यहां के पहाड़ भी रंग बिरंगे हैं। इस सम्पूर्ण मार्ग में कोई भी जीव जन्तु नहीं मिलता। केवल कहीं कहीं भेड़ बकरियों को चराते हुए कोई भूला भटका गडरिया दीख पड़ता है।

वास्तव में इस स्थान की निस्तब्ध शान्ति सारे पर्वतीय प्रदेश की ऊजड़ता का श्मशान-समान चित्र है। केवल नदी के प्रवाह का स्वर ही इस शांति को भंग करता प्रतीत होता है। ६ मील निरन्तर घोड़ों पर चले चले शाक्चुम नामक स्थान पर आ विश्राम किया। यहां की ऊंचाई १४६२० फीट

है। यह बंजर वन में बृटिश राज्य का अन्तिम पड़ाव है। यहां रात्रि को जल वृष्टि और वायु की तीव्र गति शीत की वृद्धि करते हैं। यही वह स्थान है जहां से बृटिश राज्य सीमा का उल्लङ्घन कर तिब्बत प्रदेश के लिये हिमालय को पार करते हैं। यहां पर्वतीय दृश्यों की भी अन्तिम सीमा है।

शाङ्चुम से लीपूलेक घाटी द्वारा हिमालय को पार कर तिब्बत प्रवेश के लिये प्रस्थान किया। इस घाटी की ऊंचाई १६७५० फ़ीट। यहां पर प्राण वायु की कमी के कारण सांस लेने तक में कठिनाई होती है और अत्यधिक शीत आदि के कारण घाटी का पार करना महाकष्टकर और मृत्यु-तुल्य भयंकर है। शाङ्चुम से लगभग ६ मील चल कर इस घाटी की चोटी पर पहुंचते हैं। मार्ग में नाना रंग रूप के नीले, लाल, काले, तथा सफ़ेद पर्वत अपने अन्तिम दर्शन दे तिब्बत प्रवेश के लिये विलुप्त हो जाते हैं। यह ऊंचे-ऊंचे पहाड़ जिनसे सुरक्षित मार्ग पर हम अब तक चले उन का भी अब साथ छूट जाता है। वृक्ष आदि पहिले ही संग छोड़ चुके थे। इस प्रकार अब तिब्बत प्रदेश में वृक्ष विहीन निर्जन मार्ग से गुज़रना पड़ता है। लीपूलेक की घाटी के शिखर पर पहुंचते ही वास्तव में हम एक महान् ईश्वरीय नाट्य गृह के द्वार पर आ पहुंचते हैं। अब तो न कोई राह दिखाई देती है और न कृष्णाम्बरी पर्वत ही। बस संभल

संभल कर चलते चलते एक चमत्कार पूर्ण तथा विस्मयकारी दृश्य में प्रवेश करते हैं। कुछ दूर फैली हुई लम्बी चौड़ी हिम-चादर पर कठिनाई से चलते हैं। नेत्र विस्मय से स्थिर हो जाते हैं। चारों ओर श्वेताम्बरी ऊंचे ऊंचे हिम गिरि दीख पड़ते हैं। इस नाट्य शाला में प्रवेश करते ही यवनिका के उठने के साथ साथ दृश्य पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है। श्यामवर्ण पर्वतों के स्थान में स्वच्छ श्वेतांबरी हिमगिरि उपस्थित हैं। जल के झरने तो सूर्यदेव की किरणों के ही रूप में दृष्टिगत होते हैं। निर्मल स्वच्छ श्वेत हिमाच्छादित पर्वत सूर्य के प्रकाश से विद्युत समान चमकते और प्राकृतिक सौन्दर्य की अद्वितीय छटा को प्रगट करते हुए मन को मुदित करने लगते हैं। इसी पर्वत समूह में दो पहाड़ों के बीच कुछ नीचा भाग है जिसे घाटी कहते हैं। वास्तव में इस स्थान की दैवी लीला और ईश्वरीय कला का दृश्य अवर्णनीय है। तुलसी दास जी के शब्दों में यह सत्य है कि :—

"गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी।"

यहां शीत की विषमता से सारा शरीर ठिठुर कर हिमवत जमा सा प्रतीत होने लगता है। बड़ी ही मन्द गति से शनैः शनैः चल कर लगभग चार मील उतराई कर तिब्बत में वहां की चौकी पाला नामक स्थान पर आते हैं। पाला पर दो विश्राम गृह हैं जो विश्राम के लिये सुविधाकर हैं। यहां पर एक चौकीदार रहता हुआ सुना गया परन्तु वह

उपस्थित तो सम्भवतः कभी रहता ही नहीं।

तिब्बत एक दूसरी ही दुनियां है। यहां पर पेड़ का नाम भी नहीं। विस्तृत पथरीले मैदान पर यत्र तत्र घास उगी हुई देख पड़ती है। समीप में कोई पर्वत भी नहीं परन्तु दूर दूर पहाड़ दिखाई देते हैं जो रूखे सूखे और मिट्टी व पत्थरों के हैं। और उन पर जहां तहां बर्फ देख पड़ती है। यहां पर ब्रिटिश राज्य के समान काले पत्थर गिरने का कुछ भी भय नहीं। यह अनायास ही अचम्भित कर देने वाला परिवर्तन बड़ा ही चित्ताकर्षक लगता है। तिब्बत में जल और हवा वेग से बहते हैं। मुख आदि सब शीत से फट जाते हैं और त्वचा का रँग लाल पड़ जाता है। इस स्वतंत्र देश में स्वतंत्रता की विचित्र लहर चलती है। इस स्थान पर पर्वतीय नालों से नालियां काटकर कृषि के सिंचन का बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध कर रक्खा है।

लगभग डेढ़ मील चलने पर "होषीगांग" नामक ग्राम के हरे भरे अन्न के खेत दृष्टिगत होते हैं। इन खेतों के बीच से होते हुए मतंग और छुड़तन—जो कि लंबी-लंबी दीवारों और छोटे-छोटे चौकोर मठों के रूप में गेरुए रंग से रंगे हुए तिब्बती लोगों के पूजन का विधान और पथ का ज्ञान कराते हैं—से घिरे हुए रास्ता चलता है। इन्हीं छुड़तन और मतंग के बीच होते हुए एक छोटी सी सुन्दर-निर्मित भवनों की बस्ती की ओर आगे बढ़ते

हैं। यह बस्ती कच्चे, मिट्टी की दीवारों के बने, चपटी छत के भवनों की है, जिनके चारों ओर रंग बिरंग के कपड़ों की झंडियां फहराती हैं। वास्तव में इन झंडियों का फहराना और छुड़तन मतंग का बनाना तिब्बतियों का एक पूजन विधान है। यह बस्ती करनारी नदी के किनारे बसी हुई तिब्बत की एक प्रख्यात मंडी है। करनारी नदी की दूसरी ओर इसी बस्ती का प्रसिद्ध बाजार है। इस सुविख्यात तिब्बती मंडी का नाम तकलाकोट या पुरांग है। हमारे तिब्बत भ्रमण में यही सब से मुख्य और बड़ी तिब्बती बस्ती पड़ती है।

८

## तकलाकोट या पुराङ्ग में

तकलाकोट करनारी नदी के दोनों ओर बसा हुआ है। इस ओर तकलाकोट केवल झंडियों की ही एक सुन्दर नगरी के समान प्रतीत होता है। प्रत्येक घर की छत पर चारों ओर अनेकों रंग के झंडे और झंडियां फहराते हुए दृष्टि पड़ते हैं। यहां पर तिब्बती लोग, जो कृषि और ऊन का व्यापार करते हैं, अधिक संख्या में बसे हुए हैं। यह लोग ऊन से बहुत प्रकार के वस्त्र बना कर बेचते हैं।

करनारी की दूसरी ओर श्वेत वस्त्रों से आच्छादित छतों के तले, कच्ची मिट्टी की झोंपड़ियां ही व्यापारी लोगों की दुकानें और निवास स्थान हैं।

इस मंडी में तिब्बती लोग और भूटिया परस्पर व्यापार करते हैं। भूटिया लोग भारतवर्ष से तिब्बत वालों के उपयोग की विविध वस्तुयें लाकर यहां बेचते हैं और तिब्बती लोग भेड़, बकरी, और अन्य पशुओं की खालें तथा ऊनी वस्त्र बेचते हैं। च्यौंदास और व्यांस के भूटियों की तिब्बत से क्रय-विक्रय की यह विशाल मंडी बनी हुई है।

यहां कृषि, तोषी ग्राम से प्रारम्भ होती है और करनारी के किनारे किनारे के सभी ग्रामों में मटर, सरसों आदि बोई जाती है। यहां कृषि के लिए जल पहुंचाने का अच्छा प्रबन्ध है। नदी, नालों से कृषि की सिंचाई करने के लिए छोटी छोटी नालियां बना कर बड़ी सावधानी के साथ जल पहुँचाया जाता है।

तकलाकोट प्रान्त में तैंतीस ग्राम सम्मिलित हैं जिनमें खेती भली प्रकार होती है। यहां पर वर्ष में प्राय: एक ही बार अन्न बोया जाता है। पैदावार साधारण होती है। खेतों में खाद आदि डालना और भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना तो यहां के लोग जानते ही नहीं। प्रकृति माता की कृपा पर ही यहां की कृषि निर्भर है।

तकलाकोट तिब्बत प्रदेश के हमारे भ्रमण में सर्व प्रथम और अन्तिम सुनिर्मित मानव बस्ती है। बरखा के घोर निर्जन बन में तिब्बती राज्याधिकारी तर्जुम के निवास स्थान और दो एक भवनों के अतिरिक्त हमारी इस यात्रा में

बौद्ध मठ और कोई कोई भवन दृष्टिगोचर होता है अन्यथा तो सर्वत्र गृह-हीन तथा निर्जन विस्तृत मैदान ही मैदान मिलता है। मनुष्य भी गृह-हीन भ्रमक समान अपने अस्थायी डेरों में ठहरा हुआ दिखाई पड़ता है। तकलाकोट के चारों ओर भी ऊँचे-ऊँचे मिट्टी के पहाड़ हैं जिनमें अनेकों ही द्वार निर्मित दिखाई पड़ते हैं। यह विगत समय में सुवासित गुफायें थीं, इनमें मनुष्य रहा करते थे परन्तु अब यह सब खण्डहर होकर निर्जन होगई हैं। तकलाकोट तिब्बत राज्य का एक प्रान्तीय केन्द्र है जिसका जिलाधीश जुंगपंग वहीं रहता और अपनी कचहरी करता है। प्रजा इससे बहुत भयभीत रहती है और इसके सेवक लोग साधारण तम्बाकू का प्रयोग भी करने के लिये स्वतंत्र नहीं। वैसे लुक छिप कर यहां सब ही लोग सिगरेट, तम्बाकू व चरस और मदिरा आदि मादक द्रव्यों का मन भर कर प्रयोग करते हैं।

नगर में किसी प्रकार की स्वतन्त्रता, शिक्षा तथा रात्रि-प्रकाश आदि का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। यहां पुलिस व सेना तो नाम को भी नहीं है। सारे का सारा नगर भारत के छोटे से ग्राम के समान अव्यवस्थित और मल, मूत्र तथा भेड़ बकरियों की हड्डी से बहुत ही गंदा प्रतीत होता है। स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों से यहां के लोगों को पूर्ण अनभिज्ञता ही है। रोग और रोगी सम्भवतः कोई होते ही

न होंगे। इसी से यहां पर कोई वैद्य या औषधि भी प्राप्त नहीं होती।

यहां का शासन भी सब अनियमित और अनियंत्रित ही है। यद्यपि शासन कठोर और एकतंत्र है। दण्ड-विधान बहुत ही निर्दयता से प्रयुक्त किया जाता है। यहां कोड़े मारना साधारण दण्ड है। सब प्रकार के अपराधों के लिये कोड़े लगाये जाते हैं यहां तक कि मृत्यु दण्ड भी कोड़े मार कर दिया जाता है। बहुत बार नाक कान भी कटवा दिये जाते हैं। व्यभिचार यहां बहुत भयंकर अपराध माना जाता है। यहां वास्तव में कोई कारागृह नहीं परन्तु दण्डित दोषी लोहे की जंजीर से हाथ पांव बांध कर नगर के बाहर डाल दिया जाता है, जिसको भोजन वस्त्र आदि भी दिया जाना सर्वथा वर्जित है। उसके मित्र तथा सम्बन्धी समय समय पर, जीवन रक्षा के लिये थोड़ा भोजन पहुँचा देते हैं परन्तु प्रायः ऐसे दण्डित व्यक्ति दण्ड को पूर्ण करने के पूर्व ही क्षुधा और शीत से पीड़ित हो तड़प-तड़प कर प्राण त्याग देते हैं।

मृत्यु दण्ड १०००) रु० का धन देने से हटा दिया जाता है। जुंगपंग अपने अधिकार अपने व्यक्ति व सेवकों द्वारा ही प्रयुक्त करता है। वह अपना वेतन तिब्बत राज्य से प्रचलित राज्य के सिक्कों में नहीं पाता परन्तु उसको भूमि कर आदि उगाहने का अधिकार रहता है जिसका एक भाग

राज्य कर स्वरूप केन्द्रीय तिब्बत सरकार को भेज देता है। यहां तिब्बत राज्य की ओर से व्यापार भी होता है और प्रजा को बरबस चाय लेनी पड़ती है जिसका मूल्य देने को वह बाध्य होती है। राज व्यापारी दु'गच्योंग तिब्बत राज्य का व्यापार संचालन करते हैं। यहां राज्य धार्मिक भावनाओं से ही पोषित होकर पुष्टि पाता है। राज्य की सारी शक्ति प्रजा की अन्ध-धर्म-भक्ति में ही है।

ल्हाशा स्थित दलाई लामा तिब्बत का सर्वमान्य धर्म गुरु और सर्वोच्च राज्याधिकारी है। उसी के आधीन सर्व राज्य और सम्पूर्ण धार्मिक संगठन का संचालन होता है। तिब्बत में इस प्रकार धर्म और राज्य एक ही व्यक्ति में केन्द्रित और एक ही संगठन के आधीन है। सारा तिब्बत बौद्ध धर्मानुयायी है। तिब्बत का बौद्ध मत या लामावाद एक विशेष ही धर्म है। तकलाकोट में भी जुंगपंग के निवास स्थान के साथ साथ बौद्ध मठ या शिवलिङ्ग गुफा निर्मित है। इस मठ में १०० भिक्षुक और ४० या ५० भिक्षुणियां स्थायी रूप से रहती हैं। इस मठ का सारा प्रबन्ध ल्हाशा से आये हुए लामा गुरु के आधीन है। यहां के निकटवर्ती ग्रामीण इस मठ पर आवश्यक भोजन सामग्री आदि तथा सेवा के लिये मनुष्य भेजते हैं। इस मठ का विस्तृत विवरण तो 'बौद्ध मठ' शीर्षक अध्याय में लिखा गया है। यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यह मठ हमारी यात्रा में आये

हुए सब ही मठों में बहुत ही सुसंगठित स्वच्छ और विशाल है। यहां के भिक्षुक और भिक्षुणी एक पवित्र धार्मिक वायु-मण्डल उत्पन्न करते हैं। यह तिब्बती बौद्ध धर्म का भली प्रकार परिचायक है। इस प्रकार तकलाकोट तिब्बत के रीति-रिवाज, कृषि-व्यापार, धर्म और शासन तथा साधारणतः ग्रामीण और नागरिक जीवन का भली प्रकार परिचायक है। यहां की भाषा हिन्दी नहीं वरन् भारतीय वेष, भाषा और भूषा इनसे सर्वथा भिन्न हैं। इनकी अन्य रूढ़ि, रीति-रिवाज आचार और व्यवहार, धार्मिक तथा सामाजिक कृतियां भारतीयों से सर्वथा भिन्न ही हैं। यहां पर भारतीय रुपया आदि कोई भी मुद्रा प्रचलित नहीं है। इनके अपने सिक्के तनखा और अर्द्ध तनखा तथा चीनी और नैपाली रुपये प्रयोग में आते हैं। इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी तिब्बत और भारत का विशेष सम्बन्ध है। बहुत से तिब्बती भारत-भ्रमण भी कर आते हैं। तिब्बत के लोगों की भाषा हम लोग नहीं समझ पाते थे और ना ही वे हमारी बोली समझ पाते थे। कुतूहल और उत्सुकता से तिब्बती पुरुष, स्त्री तथा बालकों के दल के दल हम से भेंट करने आते थे। हँसते और संकेत करते हुए मूकदल का दृश्य भी एक विचित्र ही अनुभव था। वे हमें भी उस समय तो प्रिय लगते थे और हम उन्हें उत्सुकता से निहारते थे। इनमें से कुछ लोग अपने ऊनी कपड़े, कम्बल, मोज़े आदि

तथा भेड़ बकरों की खालें बेचने को लाते थे। वे अधिकतर हमारी ओर विस्मय से चित्र-लिखे से देखते रहते थे और कभी कभी भयंकर रूप में हँस पड़ते थे। ये दीन-मलीन निर्दोषसे मनुष्य जहां भयानक और रौद्र रूप में दर्शित होते थे वहां कभी कभी इनका संग तो मन को उकता ही देता था।

तकलाकोट से संयुक्त ही, अल्मोड़ा जिले के प्रसिद्ध देश सेवक राष्ट्रीय साधु ज्ञानसिंह का समाधि-स्थान है। यह सन्त कांग्रेस और महात्मा गांधी जी का परम भक्त था। प्रारम्भ में कहा जाता है कि वह लुञ्ज पुञ्ज तथा मूढ़मति था। महात्मा गांधी की भक्ति से इसमें विशेष शक्ति और ज्योति की स्फूर्ति हुई। ये चरखा कातने, राष्ट्रीय संगीत अलापने और देश सेवा का प्रचार करने में निरंतर संलग्न हो गया। इसके देश भक्ति पूर्ण कर्म ने इसको कृष्ण जन्म-स्थान में राज अतिथि बना कर रखा। अन्त को इस परम देश-भक्त की वृत्ति देश भक्ति से परिपूर्ण परम हंस-वृत्ति में परिवर्तित हो गई। देश नाम का संगीत गाता यह सन्त भारत से तिब्बत को प्रस्थान कर गया। यहां प्रायः कैलाश-परिक्रमा की ज्यंगडा गुफा में रहता था और शीतकाल में तकलाकोट लौट जाता था। प्रारम्भ में यह महात्मा कन्दमूल तथा दुग्ध आदि का सेवन करते थे और अन्त को तो वायु ही इनका आहार रह गयी थी। अन्तिम समय में इनकी नेत्र-ज्योति नष्ट होगई और उसी दशा में वह कैलास

से तकलाकोट में आये और वहीं पर समाधिस्थ हुए। इस भारतीय देश-भक्त ने तिब्बत के निर्जन वनों में भी भारत-माता की जय घोष से गगन गुञ्जारित कर दिया और तिब्बत के अर्ध-सभ्य मनुष्यों में भी भारत के प्रति अगाध सहानुभूति उत्पन्न कर दी। अन्त को उनके हृदय का परम प्रिय और पूज्य बन कर तकलाकोट में अपने नश्वर शरीर को त्याग कर तकलाकोट के नाम को सदा के लिए अमर कर गया। यहां पर इनकी स्मृति में एक जलधारा बनी हुई है जो इनके समाधि-स्थान को सूचित करती है।

तकलाकोट से तिब्बती मुद्रा आदि तथा अन्य साम-ग्रियां लेकर हमारे दल ने मानव बस्ती को अन्तिम नमस्कार कर तिब्बत के निर्जीव मरुभूमिसमान शुष्क, जीव, जन्तु और वृक्ष विहीन निर्जन तिब्बतीय विस्तृत पर्वतीय समतल पट के लिए प्रस्थान किया।

---

९

# मान-सरोवर की राह पर

प्रातः समय तकलाकोट के चारों ओर पहाड़ की ऊँची ऊँची चोटियों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से उत्पन्न हुआ दृश्य नेत्रों को चकित कर देता है। ऐसे समय हृदय के विरुद्ध इस रमणीय दृश्य को त्यागने को विवश होकर हमने तकलाकोट से आगे के लिए प्रस्थान किया। तकलाकोट की सीमा पर मार्ग के दोनों ओर छोटे छोटे चौकोर मंदिर से बने हुए छुड़तन और लंबे लंबे दीवार समान मतंग, गेरु से रंगे हुए तिब्बतियों के पवित्र धर्म चिन्ह के द्योतक हैं। तिब्बत के लोग प्रत्येक स्थान के प्रारम्भ और अन्त में इन

चिन्हों का बनाना धार्मिक चिन्ह और पवित्र कर्म मानते हैं। इस पाषाण-समूह पर यत्र तत्र पाली लिपि में अनेकों लेख अंकित हैं। इनमें बहुतों पर तिब्बती पवित्र जय मंत्र :—

"ओ३म् मणि पद्महुँ" लिखित है जिसका अर्थ यहां के लोग इस प्रकार लगाते हैं कि जो मैं मर जाऊँ तो मुझे रास्ता दिखाना।"

आज पूर्ण रूप से विस्तृत विशाल तिब्बती मैदान में हम चलते रहे। मार्ग में न किसी वृक्ष और न किसी जीव ही के दर्शन हुए। सब ओर मटियाले ऊँचे ऊँचे टीले बर्फीली पहाड़ी चोटियां तथा पत्थर ही पत्थर देख पड़ते थे। कहीं कहीं नदी आदि में जल के दर्शन इसी प्रकार होते थे जिस प्रकार मरु-भूमि में जलाशय। रास्ते भर वायु का वेग बड़ा ही तीव्र-गति से बहता रहा। इस प्रकार लगभग दो मील चल कर टोकी नामक स्थान पर आये। जहां से काश्मीर नरेश गुलाबसिंह के वीर सेनापति जोरावरसिंह की समाधि के दर्शन होते हैं। इस वीर सेनानायक ने लदाख के धावे में अपनी सेनाओं से चढ़ाई की थी और अन्त को तिब्बती मैदान में बड़ी निर्दयता और अमानुषिकता के साथ वध किया गया। परन्तु उसके नाम का भय आज तक भी तिब्बत के बच्चे बच्चे को इसी समान है जिस प्रकार कि नैपोलियन का भय अंग्रेजों को। इस वीर योधा का सिर काट कर उसके टुकड़े टुकड़े कर

तिब्बत के गृहस्थियों में वितरण किया गया जिसको वह भावी सन्तान के हृदयों में भय और साहस उत्पन्न करने के लिये स्मृति चिन्ह स्वरूप सुरक्षित रखते हैं।

यह एकरंग और शांत मार्ग अनन्त सा जान पड़ता है। मार्ग में मानसिक एकाग्रता को भंग करने के लिए कोई भी शक्ति और साधन प्रतीत नहीं होता। केवल पत्थर ही पत्थर दृष्टिगत होते हैं। इन पाषाणों की आत्मकथा तो इतिहास का एक जीवित जाग्रत वर्णन सा ज्ञात होता है। इनकी कथा चित्त पर गहरा प्रभाव डालती है। इस कथा का विस्तृत वर्णन तो एक पृथक प्रकरण का पूर्ण कलेवर है। इस गम्भीर तथा नीरव शांति में ईश्वर की ज्योति का साक्षात् रूप दिखाई पड़ता है। आज दैवी रचयिता की अलौकिक सृष्टि का सत्य रूप में साक्षात्कार होता है। सारे ही मार्ग में चित्त में एक अपूर्व शान्ति का भास होता है और बड़े ही भावोत्पादक विचार हृदय में उमड़ने लगते हैं। इस प्रकार विचार धारा में हिलोरें लेते हुए लगभग आठ मील चलकर एक पर्वतीय स्रोत के तट पर मध्यान्ह काल में विश्राम किया। यहां पर एक छोटा सा खंगुंग नामक ग्राम है जिस में तिब्बती गऊ का दूध मिल जाता है और भोजन या ईंधन कुछ भी नहीं मिलता। चंवर या सुरागाय का दूध तो मिलता है परन्तु उसका स्वाद भी विचित्र और अरुचिकर होता है। यहां रहने का कोई भी स्थान नहीं। अपने डेरे ग्राम के

समीप इस छोटे जल प्रवाह के तट पर गाढ़ कर शीत निवारण का प्रबन्ध किया परन्तु वायु वेग से हमारे डेरे निरन्तर हिलते जुलते और वायु प्रवेश को द्वार देते रहे। इस प्रकार इस चौदह हजार चार सौ फ़ीट की ऊंचाई पर शीत से कम्पित रात्रि में श्रमित होने के कारण ही निद्रा हमारा आवाहन स्वीकार कर सकती थी। दिन भर मन्द गामी घोड़ों की सवारी से सर्वथा श्रान्त हम लोग अर्ध मूर्च्छितावस्था में रात्रि भर भूमि-शय्या पर सोये।

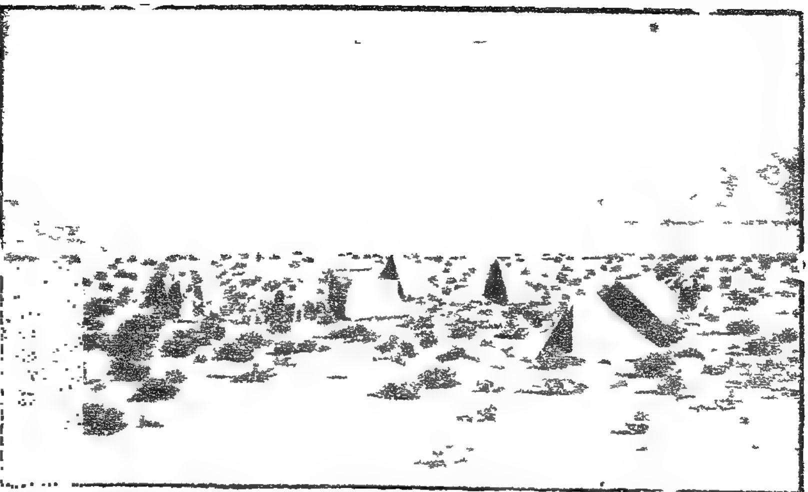
रूंगु ग से मार्ग सीधा, सरल और समतल है। गोरी ओडियाल और वलडाक या गुरला पास को पार करते समय कुछ उतराई चढ़ाई करनी पड़ती है। शेष सब मार्ग एक समान है।

आज प्रकृति के कई अद्भुत चमत्कार दृष्टिगत हुए। जलवृष्टि का होना और शीघ्र ही जलबिन्दुओं के स्थान पर ओलों का गिरना और अन्त में तुरन्त ही उन का बर्फ़ रूप में परिवर्तित हो रुई के फोये के समान मन्द गति और शान्त भाव से गिरना यहां की साधारण बात है। तिब्बत के विषय में यह विशेष जानने योग्य बात है कि यहां जल वृष्टि केवल नाम मात्र ही होती है। वास्तव में यहां हिम वर्षा ही होती है। यहां प्रारम्भ में शब्द करते हुए जलबिन्दु गिरते हैं परन्तु फिर शनैः शनैः परम शान्ति के साम्राज्य में श्वेत पुष्प वर्षा के समान हिम वृष्टि होती है।

हिम के पड़ने से सारा मैदान और पर्वतीय ढाल धवल वर्ण पर्वत शिखर के सामान हिम से श्वेत हो जाते हैं। प्रातःकाल का शीत और मध्यान्ह का सूर्य ताप तथा अन्त को हिमपात के पश्चात् कम्पित करने वाली शीतल वायु का अनुभव करते हुए राक्षसताल और मानसरोवर के बीच की घाटी रहसंग पर जाकर रात्रि को विश्राम किया। वहां से धवल वेशधारी पर्वतीय शिखर तथा मान्धाता पर्वत निर्बाध रूप से दिखाई देते हैं। इस स्थान की ऊंचाई १४८५० फ़ीट अनुमान की जाती हैं। यहां से मान्धाता का रमणीक दृश्य बड़ा ही प्रिय लगता है। यह मान्धाता राजा मान के नाम पर प्रसिद्ध है जिसने यहां तपस्या की और जिसके नाम पर जगत प्रख्यात झील सरोवर की ख्याति है। ये घाटी भेड़ बकरी तथा सुरागायों की स्वाभाविक चरागाह है इस घाटी का पूर्ण चित्रण करना वास्तव में एक चतुर चितेरे का काम है। इस स्थान की रमणीयता बड़ी हृदयग्राही है। यहां किसी भी समीपस्थ पहाड़ी पर चढ़ कर पवित्र मानसरोवर के दर्शन होते हैं साथ ही किसी अन्य पहाड़ी से बृहत्काय राक्षसताल भी दिखाई पड़ता है। चंवर गाय भेड़ और बकरी के क्रीड़ा स्थल के मध्य में एक छोटी सी जल धारा बहती है जिसके चारों ओर की हरी भरी घास के प्रलोभन में तिब्बती ग्वाले और गड़रिये अपनी भेड़ बकरी और गायों के साथ कलोल करते हैं।

ये सुरा या चंवर गाय चारों ओर चंवरों से घिरी एक छोटे हस्ती के समान विशाल और भयानक दृष्टिगत होती हैं ये प्रायः सफेद और काली ही हैं। कभी कभी झुंझला कर या उन्मत्त हो कर जब ये गायें यात्रियों की ओर भागती हैं तो हृदय को दहला देती हैं। इस हरे भरे गायों के क्रीड़ा स्थल में इनके रखवारे अपने डेरे डाले एक कोने में सकुटुम्ब रहते हैं। ये लोग यहां की हरी झाड़ी डामा को लुहार की छोटी सी धुकनी से फूंक फूंक कर खूब जलाते हैं और उसी से ईंधन आदि का काम लेते हैं। इस प्रकार प्रकृति की शोभा और यहां के जीव जन्तुओं की क्रीड़ा तथा मनुष्य जीवन की लीला का उपयुक्त सम्मिश्रण बड़ा ही हृदय-ग्राही और चित्ताकर्षक है। यहां पर सायंकाल को महाप्रशान्त वायु मण्डल में हिमपात एक विचित्र प्रदर्शन था। देखते देखते सारे काले पर्वत श्वेताम्बरी हो गये। सारा मैदान भी श्वेत वस्त्रधारी हो गया। रात्रि को पुनः हिमपात होता रहा और प्रातः उठते ही सारा स्थान श्वेत ही श्वेत दृष्टिगत हुआ। नेत्रों में एक विशेष ज्योति और हृदय में आनन्द की स्फूर्ति सी थी। पहाड़ी चोटियां सूर्य प्रकाश से रजत समान चमकती थी और आकाश स्थित बादल भी निस्तेज बर्फ के पहाड़ के सामान देख पड़ते थे। यह हिम महिमा विस्तार से पृथक अध्याय में वर्णन की गई है।

रहसंग से साधारण उतराई चढ़ाई करते लगभग



मान सरोवर के किनारे लेखक और उनके साथियों के डेरे

आठ मील चल कर मान सरोवर के पश्चिमी किनारे पर आ विश्राम किया। सारा मार्ग मानसरोवर और राक्षस ताल के मध्यवर्ती स्थान में चलता था। मार्ग में कहीं कहीं खरगोश दीख पड़े। इधर डामा के पौधे जो गीले ही जल जाते हैं तथा दरिमा और लब्धंग अधिकता से दृष्टिगोचर हुए इनके पुष्प पीत वर्ण के होते हैं। लब्धंग की झाड़ियां मानसरोवर के तट पर बहुत अधिक पायी जाती हैं। मानसरोवर का किनारा यद्यपि बहुत निकट ज्ञात होता है परन्तु रहसंग से ११ बजे के चले मानसरोवर शाम के ४ बजे पहुँचे। पवित्र मान-सरोवर का परम रम्य और अति प्रिय वर्णन विस्तृत रूप से दूसरे अध्याय में किया गया है।

---

१०

# तिब्बत के पथरीले मैदानों में

कुमायूं के पर्वतीय प्रदेश में पदार्पण करने के पश्चात् निरन्तर और नित्य ही किसी पर्वत के तुंग उत्तंग पर चढ़े तो किसी पर्वत की तरहटी में उतरे। इस प्रकार उतरते चढ़ते ही सारा समय पर्वतीय प्रदेश के पर्यटन में ही व्यतीत हुआ। जिस दिन से मैदान छोड़ पहाड़ पर आये मैदान की समतल भूमि और विशाल क्षेत्रों के दर्शन तो अति दुर्लभ होगये परन्तु हिमाच्छादित हिमालय की लीपूलेप की राह पार कर तिब्बत में प्रवेश करने पर पुनः एक बार समतल भूमि के दर्शन हुए। तिब्बती समतल मैदान भारत

के हरे भरे मैदान समान नहीं अपितु शुष्क पथरीले मरुस्थल तुल्य हैं। न कोई जीवजन्तु और न हरे भरे वृक्ष ही देख पड़ते हैं। सर्वत्र महाशीत मृत्यु सम सर पर मँडलाती रहती है और प्रत्येक क्षण डाकुओं का भय हृदय में बना रहता है। इस प्रकार शीत और डाकू मृत्यु के समान सदैव भयभीत किये रहते हैं। जल और वायु का प्रवाह बड़ा तीव्र और वेगशाली है और बिना रोक रोक टोक निर्द्वन्द और उद्दंड रूप से बहता है। इस प्रकार निर्जीव और निरुत्साह इस भयानक बियाबान जंगल में हम लोग अपने अपने मन्दगामी टट्टुओं पर बैठे हुए प्रातः से सायं तक निस्तब्ध शांत तथा मूक बन, पूर्ण मौन धारण किये हुए, आत्म चिंतन और आन्तरिक मनन में निरन्तर संलग्न, अर्ध निद्रित अवस्था में चलते रहे।

इस ईश्वर की सृष्टि में कहीं भी मानवी कृति का लेश-मात्र भी सम्मिश्रण दिखाई नहीं पड़ता। रचना का भी कुछ आकर्षक प्रदर्शन नहीं जान पड़ता। सर्वत्र एक रंग और नीरस मार्ग अपरिवर्तित रूप से निर्धारित और निश्चित सा चला जाता है। इस अर्द्धजाग्रत अवस्था में मानसिक विचार चक्षु के सम्मुख इन असंख्य प्रस्तरों में जो रात्रि को आकाश के तारों के समान प्रकाशित होते हैं, ईश्वर की ज्योति झलकती है। जिस प्रकार प्रत्येक तारे की चमक में ईश्वर की झलक, दिव्य दृष्टि व्यक्ति को प्रतीत होती है इसी

प्रकार प्रत्येक पाषाण की आकृति में ध्यान निमग्न मनुष्य को अनेकों ही मूक कथाओं का भास होता है। ध्यानावस्थित मूक मनुष्य अपने कर्णों में एक दिव्य श्रवण शक्ति सी अनुभव करता है और उसको प्रत्येक पाषाण स्वत: सम्भाषण करता सुनाई पड़ता है। इन पाषाणों की हृदय विदारक आत्मकथा दु:खद मानसिक व्यथा अथवा मनुष्य की क्रूरता और ईश्वर की परम दया का जीवित जागृत इतिहास है।

पाषाणों की पवित्र आत्मकथा स्वयं एक बृहत इतिहास है। प्रत्येक पाषाण बड़े ही दया भरे आत्मानुभव को हृदयद्रावक रूप में वर्णन करता है। इस निर्जन और नीरव बन में उच्छृखल मन भी एकाग्र हो इनकी कथा सुनने में निमग्न हो जाता है। मालूम पड़ता है कि पाषाण कह रहे हैं कि हम किसी समय समुद्र की तरहटी में थे और सदैव जल से प्लावित जीवन व्यतीत करते थे। कालचक्र के प्रभाव से हिम धारी उच्च शिखर भी हम रहे और अब पहाड़ों से गिर गिर कर यहां पर हम पददलित हो रहे हैं। हमने प्रकृति के सभी प्रकार के थपेड़े खाये। शीत में, धूप में, जल और हिम वृष्टि तथा वायु की तीव्र गति में भी हम नग्न तन यहां पड़े रहे। इस भांति युगों और वर्षों से अपने शरीर पर मनुष्य की भी लात और ठोकरें खाते हुए हम यहां पर निश्चल स्थित हैं। हाय!

निर्दयी मनुष्य कठोरता में हम से ही उपमा देते हैं परन्तु उनके हृदय तो हम कठोरतम से भी कठोर हैं। हमारे शरीर पर किसने हिचकिचाहट से पैर रक्खे ? किसने कभी यह विचार किया कि पत्थर भी बेचारे घिस घिस कर रेत हुए जाते हैं ? हमें अपने भावी जीवन पर कभी ध्यान नहीं हुआ और सदैव संसार के जीवों के मार्ग में पड़े पददलित ही होते रहे। हमारी सहन शक्ति और त्याग की प्रसंशा और सराहना तो दूर, हमें तो सदैव हृदयहीन कठोर और महाकठोर माना जाता है। परन्तु यह मानव समाज मृदुलता और सहृदयता की जो हर स्थान से दुहाई देता है उसने कब द्रवित हृदय से हमारे लिये दया के दो आंसू बहाये ? किसी ने भी कभी भूले भटके कहा है कि हम सदैव निर्दयता से दले जा रहे हैं और दया के पात्र हैं ? इस प्रकार हमारी दुख पूर्ण कथा तो अनन्त है। मनुष्य की घोरतम निर्दयता और अन्याय अकथनीय है। कष्ट सहने वालों का सर्वत्र मान्य और सराहना होती है परन्तु हमारे मूक कष्ट-सहन पर न कभी किसी ने प्रशंसा की और न कभी दया। इस प्रकार हमारी व्यथा की आत्म-कथा "दास्ताने ग़म" इतिहास में एक अद्वितीय और अवर्णनीय अध्याय है।

तिब्बती पाषाण-पूर्ण विस्तृत क्षेत्र में जो निरंतर पाषाण साम्राज्य है और उनकी जो दुःखद आत्म कथा है

उसका हृदयद्रावक वर्णन उन्हीं के मूक मुखों से ऊपर कहा जा चुका है। उसी के साथ साथ ईश्वर की महिमा भी अलौकिक है। इन पत्थरों को भी नाना रूप रंग देकर इस एक रस पाषाण-जगत को भी विभिन्नता और सौन्दर्य प्रदान किया है। वास्तव में ईश्वर न्यायकारी और दयालु है। जहां पत्थरों की आत्म कथा इतनी दुःखद है वहां ईश्वर की दया इतनी महान् है कि यही पत्थर विभिन्नता और सौन्दर्य के जीवित चिन्ह हैं। यही पत्थर मानव हृदय में नये नये भाव जागृत करते हैं। हृदय को उल्लासित और प्रभावित कर शान्त मन-सागर में भी लहरें उत्पन्न कर देते हैं तथा ईश्वर की लीला को, उसकी महिमा को और महत्व को बड़े ही प्रभाव शाली रूप में दिखाते हैं। इन पाषाणों की कहानी उन्हीं की ज़बानी जहां मानवी निर्दयता का नग्न रूप दर्शाती है वहां दैवी दया का दिग्दर्शन करा सारे जगत् के नेत्रों को चौंधिया देती है।

---

प्राकृतिक छटा

११

## "हिम रहस्य"

तकलाकोट से चलने के पश्चात् निरन्तर कई दिन तक हम पर्वतीय पाषाणों की आत्म-कथा सुनते रहे और तिब्बती मैदान में सर्वत्र जीव और वृक्षों की विहीनता में केवल एक मात्र पाषाणों के ही दर्शन में कालक्षेप करते रहे। इसके अनन्तर प्राकृतिक लीला का एक और महिमा-पूर्ण विचित्र चमत्कार देखा। एक संध्या को जब हम रहसंग के लिये मानसरोवर की ओर जा रहे थे, अनायास ही शान्त वायु मण्डल में, निर्मल और नीलवर्ण आकाश मेघाच्छादित हो गया। देखते

देखते देखते मेघ, जल तथा ओलों की वृष्टि करते हुए क्षण भर में पुष्प समान हिम वर्षा करने लगे। इस हिमवृष्टि का हमारे जीवन में यह सर्व प्रथम अनुभव था।

सायंकाल होते होते हम लोग रहसंग पहुंचे और वहां एक छोटे से जलश्रोत के समीप अपने डेरे डाल दिये। इसी बीच जब हम रात्रि-विश्राम का प्रबन्ध कर ही रहे थे कि सहसा वहां की शांति महाशांति का रूप धारण करने लगी। वास्तव में यह शांति भावी प्रलयकारी आंधी की परिचायक थी। हम सब लोग स्तब्ध तथा विस्मित हो अपने अपने डेरों में बैठ गये। देखते देखते नील वर्ण आकाश धवल रूप में परिणित होगया और बड़े ही शांत-भाव से हिम-वर्षा होने लगी। सारी भूमि पर श्वेत हिम की चादर सी बिछ गयी। हरी-भरी घाटी श्वेत वस्त्र धारण कर सर्व प्रकार श्वेत ही श्वेत दृष्टिगत होने लगी। सारे मैदान के झाड़ और पौधे हिममय दीख पड़ने लगे। भेड़, बकरी, गाय आदि सब ही इस श्वेत बर्फ के वस्त्रों से आच्छादित हो गईं। थोड़ी देर में तनिक प्रकाश सा प्रकट हुआ और हम सब ने अनुभव किया कि अब हिम वर्षा समाप्त होगई। हृदय में नवस्फूर्ति और शरीर में रुधिर की तीव्र गति सी होने लगी। मन मग्न हो आनन्द से उछलने लगा। इसी नव शक्ति से संचारित शरीर और हृदय के साथ हम लोग अपने डेरों

से बाहर आये। बाहर का दृश्य देख चञ्चल मन मचल पड़ा और बालकों के समान क्रीड़ा करने को मन मचलने लगा। हम सब लोग उतावले तथा बावले से इस विशाल बर्फ की चादर पर दौड़ने का प्रयत्न करने लगे। हमारे पैरों के जूतों के तले, बर्फ की तह के ऊपर तह जम जाने से, ज़मीन से एक-एक फ़ुट ऊँचे उठ गये। जहां भी कोई शरीर के अंग बर्फ पर पड़ते वो हिमाच्छादित हो जाते जो व्यक्ति उस बर्फ को ज्यों-ज्यों हटाता त्यों-त्यों वह अधिकाधिक बढ़ती जाती थी।

हम विविध प्रकार से हिम-क्रीड़ा करते हुए अपने साथियों के मनोविनोद का कारण बन रहे थे।

अभी यह हिम-क्रीड़ा का रमणीय नाटक समाप्त भी न हो पाया था कि हम लोगों ने महाशान्त और आदि से अन्त तक हिम वेशधारी एक अपने साथी को आते देखा। ये मनचले भी हिम-वृष्टि से पूर्व ही कहीं टहलने गये थे। स्थानान्तर और समय का कुछ अनुभव न होने के कारण ये अपनी मन-तरंग में मस्त चले ही गये और राक्षस ताल के समीप जाकर हिम-वृष्टि होने पर लौट पड़े। इस प्रकार तीन चार मील के भ्रमण में वह हिममय हो गये। ईश्वर की लीला से वह जीवित लौट आये अन्यथा इस प्रकार हिमाच्छादित तो इनका शरीर शवरूप हो हिम में ही समाधिस्थ हो जाता। हम लोग

इनके लिये चिन्तित हो प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि वे अनायास ही प्रकट हुए। कुछ घबड़ाये हुए थे। फिर भी मुस्कराहट के साथ वे अपनी आप-बीती हांफते हुए, साहस से, दूर ही से बयान करने लगे जिस प्रकार किसी नाटक के अन्त में विदूषक आकर अपना भाषण करता है। स्वयं हँसे या न हँसे पर दर्शकों का तो पूर्ण मनोरंजन कर ही देता है। फिर भी यह हिम-नाटक बड़ा ही रोचक और सुखान्त रहा।

रात्रि में पुनः हिमपात होता रहा और प्रातःकाल हमारी दृष्टि ने एक विचित्र ही सृष्टि का अवलोकन किया। नेत्र के सम्मुख सारा ही दृश्य एक परम आश्चर्यमय वस्तु था। वास्तव में यह बड़ा गोप्य हिम-रहस्य था। वहां की सारी सृष्टि हिमालय बनी हुई थी। प्रत्येक पदार्थ हिमाच्छादित था। इस गूढ़ हिमरहस्य को कोई भी समझ न पाता था। अपने बिछौने से उठते ही देखा तो सारा ही दृश्य हिममय था। हमारी रज़ाई तक भी हिममय होगयी थी। हम इस रहस्य को देखकर अपने डेरों से बाहर दैवी नाट्यकार के हिम रहस्य पर चित्रलिखे से खड़े हो गये। शनैः शनैः सूर्य देव अपनी तेजस्वी किरणों से प्रकाशित होने लगे। सूर्य के प्रकाश से हिम पर एक विचित्र लालिमा युक्त आभा चमकने लगी। नेत्र इस विचित्र दृश्य के सन्मुख चका-चौंध हो गये। धूप लगने से संसार की क्षणभंगुरता के समान सारा हिम

पिघल गया। पुनः हरे-भरे पौधे और पाषाण दिखाई पड़ने लगे। यह सारा कौतूहल स्वप्नवत् रह गया। एक ही रात्रि में कृष्ण वर्ण को श्वेत हिमाच्छादित होते देखा और प्रातः उस को फिर उसी रूप में आते देखा। यही ईश्वर की लीला और महारोचक हिमरहस्य है।

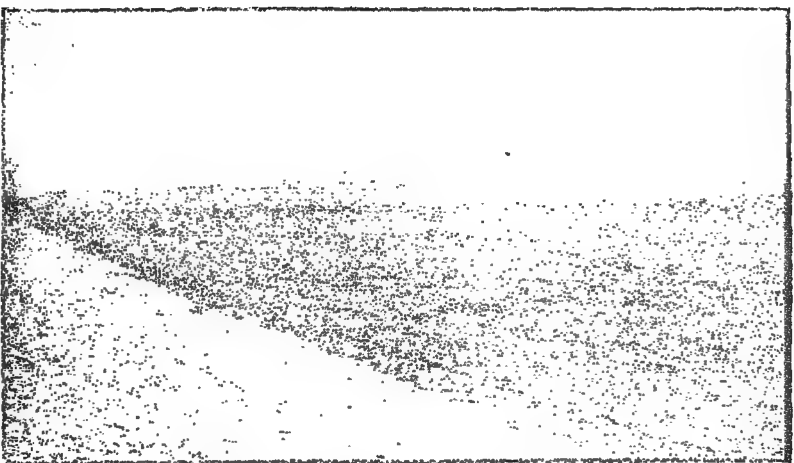
---

१२

# मानसरोवर

तिब्बत प्रदेश के निर्जन वन में एक रस और एक रंग निज मन-तरंग में व्यस्त चलते-चलते मानसरोवर के दिव्य दर्शन, चलते फिरते बादल की छांह के समान किये। इस पवित्र सर के दर्शन की लालसा कई वर्ष से हृदय में बसी हुई थी। इसका वृत्तान्त और महत्ता तो बहुत सुन रक्खी थी परन्तु दर्शन का सौभाग्य अभी मिला।

अपने देश को छोड़कर पर्वतीय प्रदेश में गगन-स्पर्शी पर्वत श्रेणियों के शान्त क्रीड़ास्थल में नदियों तथा झरनों के स्वच्छ निर्मल जल तथा शीतल मंद सुगंध पवन के



पवित्र "मान सरोवर" का एक सुन्दर दृश्य

अलौकिक आनन्द को लेते हुए तथा मार्ग की प्राकृतिक शोभा देखते हुए भारत के पर्वतीय देश से पार हो तिब्बत में प्रवेश किया। तिब्बत के रूखे-सूखे प्रदेश में जल के वेग, शीत और डकैतों के भय से पीड़ित सतत हम लोग इसी आशा में चलते रहे कि मानसरोवर के पवित्र जल में स्नान कर उसके अमृत-रूप जल को पीकर अपनी चिरवांछित मनोकामना को पूर्ण करें। मानसरोवर की झलक तो दूर से देखी ही थी। उसमें स्नान और जलपान की उत्कण्ठा वहुत ही तीव्र हो चली थी परन्तु, इस मनोकामना के पूर्ण होने के पूर्व कुछ त्याग और तपस्या भी अनिवार्य थे। सो हिमपात के भय और शीत को सहन कर रहसंग से हम लोग मानसरोवर के लिये चल दिये। अब तो मार्ग सीधा था।

कुछ दूर चलकर वह पवित्र सर दिखाई पड़ा। दाईं ओर यह पुनीत विशद सरोवर चित्त आकर्षित करता है तो बाईं ओर बृहदाकार विराट स्वरूप राक्षसताल प्रसारित है।

इन दोनों की मध्यवर्ती राह पर हम शनैः शनैः घोड़ों पर चले जा रहे थे। ज्ञात होता था कि मानसरोवर यह आया और वह आया, परन्तु ज्यों ज्यों आगे जाते थे वह दूर ही दूर हटता जाता था। इस प्रकार निरन्तर तीन घंटे चलते चलते इस परम पवित्र जलाशय के तट पर पहुंचे।

यह अनेकों नदियों का जन्म स्रोत और आनन्द तथा शान्ति का दाता चहुं ओर दूरस्थ गगन स्पर्शी शैलों

से घिरा हुआ है। अनुमानतः इसका घेरा लगभग पैंतालीस मील का है। इसके पश्चिमी किनारे पर ऊंचा उठा हुआ एक हरा भरा टीला दृष्टिगत होता है और शेष तीनों ओर श्वेत हिमधारी पर्वत हैं। जिनकी ऊंची चोटियां सूर्य के प्रकाश से परम रमणीय रूप में उद्दीप्त होती हैं। इस विशाल ताल पर पूर्ण शान्ति का साम्राज्य है।

सूर्यास्त का समय निकट होने से वायु की गति भी मंद सी हो चली और इस ललित सलिल में लहरें भी श्रान्त सी हो विश्राम के लिये लालायित जान पड़ने लगीं। ऐसे सुहावने समय में इसके पश्चमी तट पर जहां अनेकों रंग बिरंगे सुन्दर पत्थर सुशोभित हैं, कुछ समय शान्ति से बैठते ही हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। मन्द मन्द जीवन-दायिनी वायु के स्पर्श से जहां शरीर में नव-शक्ति का सञ्चार होता है। वहां मन में विचित्र ही लहरें हिलोरें लेने लगती हैं और क्षणमात्र में बड़े स्पष्ट स्वरूप में ईश्वर का उसकी लीलामय सृष्टि द्वारा, साक्षात् दर्शन होता है। चहुं ओर के, परम प्रकाशित, हिमाच्छादित पर्वतों की ज्योति से ईश्वर की विभूति सरोवर के जल में प्रतिच्छाया के रूप में झलकती है। प्रत्येक लहर उस विश्व-रचयिता की महत्ता को विस्तृत रूप में प्रगट करती है। मानवहृदय उसे स्वीकार किये बिना नहीं रहता। इधर बहुरंगे नन्हे-नन्हे पत्थर ईश्वर का गुणानुवाद पुनः पुनः गायन करते हैं।

इस प्रकार चहुँ ओर ईश्वर की महिमा को देखते, सुनते तथा अनुभव करते करते आन्तरिक आत्मा, हृदय, बुद्धि और मन सब के सब एक रूप हो उल्लास और उत्साह से उस महा शिल्पकार का चिन्तन करते हुए उछल पड़ते हैं और उस परम प्रिय को आलिङ्गन करने के लिये, सम्मुख क्रीड़ा करते हुए पवित्र सरोवर के शीतल जल में कूदने को तरंगित हो उठते हैं। जल में प्रवेश करते ही शरीर में एक विचित्र चेतना-शक्ति विद्युत वेगसे चलने लगती है और स्नान करते ही परमानन्द लाभ होता है। पहिला गोता सर्व ताप हारी, द्वितीय आनन्द दाता और तृतीय महा शान्तिप्रद प्रतीत होता है। मनुष्य शान्त चित्त हो मन ही मन उस महा प्रभु की महिमा का मुक्त कण्ठ से गान करने लगता है।

इस अलौकिक स्थिति में हम भी उस दिव्य-ज्योति की स्तुति में तल्लीन हो गये। अनिर्वचनीय प्रेमयुक्त परम भक्ति से तन्मय हो नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। तनिक इस शान्त निद्रा से नेत्र खुले और ज्ञान हुआ कि सूर्यास्त हो गया।

मानसरोवर के तट पूर्णिमा की रात्रि भी ईश्वर की सृष्टि की महिमा का अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णन करती है। रात्रि में पूर्ण चन्द्र की परम रम्य-ज्योति में सरोवर की शोभा अवर्णनीय थी। स्वच्छ जल में तारों का प्रतिबिम्ब

नील वर्ण सरोवर को द्वितीय आकाश का स्थान प्रदान करता था। पुनः ऊपर और नीचे नील-वर्ण आकाश और श्वेत हिमाच्छादित पर्वतों पर प्रतिबिम्बित हो चहुँ ओर के दृश्यों को आकाश में परिवर्तित कर देते थे। इस प्रकार उस एकान्त तथा शान्त रात्रि में सरोवर पर खड़े हुए व्यक्तियों को यह स्थान इन्द्रलोक सा जान पड़ता है।

प्रातः होते ही सुरम्य सरोवर और ईश्वर की अपार महिमा का साक्षात्कार होता है। उस परम शक्तिशाली की ज्योति, प्रत्येक सूर्य-रश्मि से प्रकाशित होती है। मनुष्य के नेत्र इस महिमा के दर्शन कर एकटक स्थित हो जाते हैं। मानव हृदय ईश्वरीय वैभव और विभूति की ज्योतिर्मय मूर्ति और और सौन्दर्य की प्रतिमा के सम्मुख श्रद्धा से झुक जाता है।

मानसरोवर के सुन्दर से सुन्दर वर्णन और वहां की प्रकृति का अलौकिक सौंदर्य बिना राज-हंस दर्शन किये नीरस और अपूर्ण है। जितनी लालसा पवित्र मानसरोवर के जल में स्नान करने की हमारे हृदय में थी उससे कम इच्छा राज-हंस के दर्शन की न थी। जिस समय से हम मानसरोवर के तट पर आये उसी क्षण से राज-हंस की खोज में नेत्र आतुर हो रहे थे। अन्त को बड़ी खोज करने पर हमें सायंकाल के समय पहली बार राज-हंस के दर्शन हुए। आकाश में एक हंसों का जोड़ा उड़ता हुआ

दिखाई पड़ा। इसके पश्चात् तीन चार अन्य जोड़े मानसरोवर में तैरते हुए दृष्टि पड़े। यह दैवी पक्षी श्वेत और श्याम-वर्ण मिश्रित बड़े ही मन-मोहक प्रतीत होते हैं। यह पक्षी निर्द्वन्द हो अपने सिर को ऊँचा किये हुए मन-मस्त, जल में तैरता चला जाता है। इस का अग्र भाग सारा श्वेत और पीठ स्वर्ण-वर्ण समान होती है। ग्रीवा के चारों ओर कृष्ण वर्ण का चिन्ह इस सुन्दरता के साथ अंकित होता है, जैसे कि उसके कंठ में माला पड़ी हो।

वास्तव में मराल इस विशाल सरोवर का एकमात्र राजा है और इसके अधिकार में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जहां हमारे हृदय की मानसरोवर दर्शन की अभिलाषा पूर्ण हुई वहां राज-हंस को भी अवलोकन करने की उत्कट इच्छा पूर्ण होगई।

---

१३

# मानसरोवर से कैलाश

तकलाकोट से मानसरोवर तक लगभग १६०० फ़ीट की चढ़ाई करनी पड़ती है। तकलाकोट की ऊंचाई १३३०० और मानसरोवर की १४६०० फ़ीट है। यह चढ़ाई धीरे-धीरे इस प्रकार करनी पड़ती है कि मालूम ही नहीं होता कि चढ़ाई कर रहे हैं।

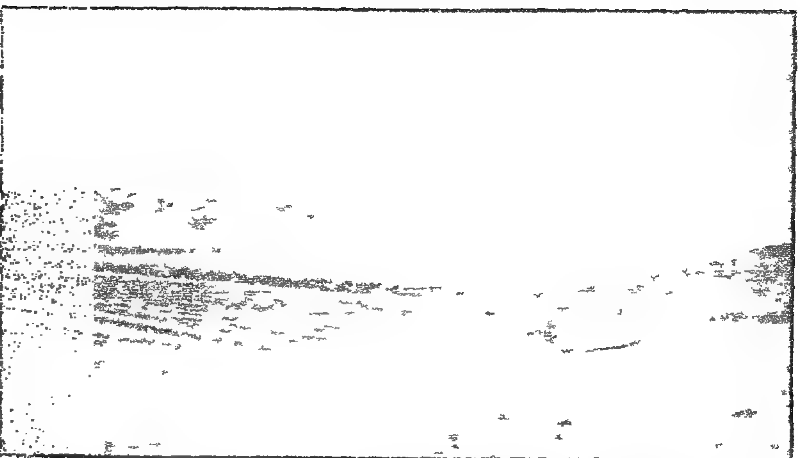
मानसरोवर से आगे लगभग एक-सी ऊँचाई है और समतल सुदूरवर्ती मैदान दिखाई पड़ता है इस विस्तृत मैदान का कुछ आदि अन्त ही नहीं जान पड़ता। इस विशाल क्षेत्र में घास खूब उगती है जिसके कारण यह भेड़ बकरी

सुरागाय और अन्य जंगली घोड़े आदि का चरागाह बन गया है। मानसरोवर के समीप यह वह स्थान है जहां ऊन का व्यापार बहुत होता है। तिब्बत में यह ऊन के व्यापार का अच्छा केन्द्र है। यहां से ऊन लदाख, नैपाल, कुमायूँ तथा शिमला की ओर जाती है। मानसरोवर पर घास के होने से गब्यांग के भूटिये तथा ग्यानमां और तकलाकोट के तिब्बती व्यापारी अपनी भेड़ और बकरियां चराते हैं। तकलाकोट के समीप होने से मानसरोवर के व्यापार को प्रोत्साहन और सुविधा मिलती है। कारण यह है कि तकलाकोट भारत के रेलवे स्टेशन टनकपुर से लगभग २०० मील है।

मानसरोवर के तट पर जहां शुद्ध सात्विक वायुमण्डल में तपोभूमि का सा अनुभव होता है। यह वास्तव में पूर्व-कालीन ऋषियों और मुनियों की तपस्या की पवित्र भूमि रही भी थी। यहां पर प्रसिद्ध राजा मान्धाता ने भी तपस्या की थी जिसके नाम पर मान्धाता पर्वत और मानसरोवर झील का, नाम पड़ा। यहां भी मनुष्य की दूषित-वृत्तियों का सर्वथा अभाव नहीं है। हमारे पथ-प्रदर्शकों ने हमें पहिले ही सूचित कर दिया था कि तिब्बत में प्रायः डाकू स्वच्छन्द रूप से भ्रमण करते हैं और अवसर पाकर यात्रियों को लूट लिया करते हैं, इस कारण हम उनसे सर्व प्रकार सावधान होगये थे परन्तु उन्हें देखने की प्रबल इच्छा

अवश्य थी। अनायास ही उनकी एक टोली दिखाई पड़ी। वे अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित सुंदर सैनिकों के समान वेश धारण किये हुए थे।

यह लोग प्रायः उन्हीं पर आक्रमण करते हैं जो संख्या में बहुत कम होते हैं या जिनमें इनसे बदला लेने अथवा दंड दे भगा देने की शक्ति अथवा साहस की न्यूनता प्रतीत होती है। हमको साहसी और शक्तिशाली पाकर यह लोग पैंतरा बदल गये। भोले भाले यात्री के समान बन कर हमें बिना छेड़े छाड़े ही यह लोग आगे बढ़ गये। इनका रूप रंग, चाल ढाल वीर योद्धाओं तथा राज कुमारों के समान प्रतीत होता था। इनके पर्वतीय घोड़े हवा से बातें करते थे। वह स्वयं भी बड़े बलिष्ठ थे। इन का भय तिब्बत में प्रतिक्षण मृत्यु समान बना रहता है। यह गठीले जवान अपने रूप रंग और ढंग में तिब्बत के लोगों से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हैं। यह प्रायः निर्धनी होते हैं और जब और कोई चारा नहीं मिलता तो चोरी और डकैती करने में भी नहीं हिचकते। इन पर मरता क्या न करता वाली कहावत पूर्णतया लागू होती है। इनके कपड़े के डेरे छोटे से दुर्ग समान होते हैं। इनके डेरे प्रायः चोटी पर रस्सियों से इस प्रकार जोड़ दिये जाते हैं कि धुआं निकलने को सीधा और सरल मार्ग बना रहता है। ऊपर से झोंपड़ी के समान और नीचे से चौकोर चार दीवारी से लगते हैं। तिब्बत में प्रायः इसी



पवित्र "मान सरोवर" के तट पर श्वेत शिखाधारी "मानधाता" पर्वत

प्रकार के डेरे तिब्बती लोग लगाते हैं। तिब्बती लोगों के वस्त्र बहुत मूल्यवान होते हैं। यह लोग रेशम, अंडी और ऊन आदि के बड़े सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं।

मानसरोवर के चारों ओर बौद्ध मठ हैं जिन्हें गुम्फा कहते हैं। गुम्फा का अर्थ एकान्त स्थान है। यह गुम्फायें बहुत सी बातों में एक दूसरे से भिन्न हैं, परन्तु गन्दगी सभी में पाई जाती है। बकरी और भेड़ इन गुम्फाओं के भिक्षु और भिक्षुणियों का मुख्य भोजन होने से इन पशुओं की हड्डियों का समूह का समूह बुरी तरह से फैला हुआ मिलता है। यह भिक्षु और भिक्षुणियां लौटते हुए यात्रियों से भिक्षा भी मांगती हैं। इन गुम्फाओं में लामागुरु तिब्बत से आकर शासन करता है। यहां तिब्बती भाषा ही प्रयुक्त होती है पाली भाषा का एक छोटा सा पुस्तकालय भी इनके साथ संयुक्त है। मठों के अन्दर प्रतिमाओं के अतिरिक्त नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर चित्र दीवारों पर अंकित तथा कपड़े पर बने हुए लटके रहते हैं। मानसरोवर के किनारे ऐसी ऐसी आठ गुम्फायें हैं। गुसल और जीजू नामक दो गुम्फाओं के हमने भी दर्शन किये। इनका विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

मानसरोवर को छोड़ते समय जीजू गुम्फा की ओर डेढ़ मील चलने पर १०० फीट चौड़ी जलधारा का मान-सरोवर तथा राक्षस-ताल के साथ सम्बन्ध होते हुए देखा

यह धारा लगातार वर्ष भर तक जल से प्रवाहित नहीं रहती और बहुत समय तक सूखी रहती है। इस समय भी इसमें जल प्रवाह नहीं हो रहा था।

यहीं मानसरोवर के पास में कई सोने की खानें दृष्टिगत होती हैं। यहां की मिट्टी लाल है। इन कानों से किसी समय में सोना निकाला जाता था परन्तु पूछने पर ज्ञात हुआ कि तिब्बत की केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार यह कार्य बन्द कर दिया गया। चिरकाल से वह इसी प्रकार बन्द पड़े हैं। तिब्बत बहुत प्राचीन काल से स्वर्ण के लिए प्रसिद्ध रहा है। तिब्बतीय स्वर्ण का प्रसंग रामायण में राजसूय यज्ञ के समय में भी आया है, जहां लिखा है कि तिब्बत-नरेश की भेंट में उसके देश का स्वर्ण भी उपस्थित था। आज तक भी प्रचलित तिब्बती गाथाओं और पौराणिक कथाओं में तिब्बती स्वर्ण का वर्णन आता है।

यहां से मैदान के समान समतल भूमि का आरम्भ होता है। यह सारा मैदान घास का सुन्दर क्षेत्र है। और जंगली घोड़ों का विशेष रूप से क्रीड़ास्थल है। यह विस्तृत मैदान बरखा कहलाता है। बरखा का अर्थ पर्वतीय प्रदेश अर्थात् टेबल लैंड है। बरखा के मैदान में घोड़ों के दौड़ने का दृश्य भी दर्शनीय है। यह बड़े तीव्र वेग से इधर से उधर निर्द्वन्द्व दौड़ते हैं। बरखा पर तिब्बती राज्याधिकारी तर्जुम का निवास स्थान है। तर्जुम जुंगपन से नीचे का

परन्तु उसके अधीन न होकर एक स्वतंत्र राज-कर्मचारी है। करदम के जुंगपन का पद जब से हटाया गया तबसे तर्जुम के अधिकार बहुत बढ़ा दिये गये। तर्जुम व्यापार और डाक की देख रेख के अतिरिक्त तिब्बतियों के परस्पर के विवाद भी निर्णय करता है। और छोटे मोटे अपराधों में स्वयं भी दण्ड दे देता है। इस स्थान पर कच्ची मिट्टी के तीन चार भवन निर्मित हैं। इन्हीं में से एक तर्जुम का निवास-स्थान है। यह मकान तकलाकोट के समान से ही हैं। इनमें द्वार और खिड़कियां भी धूप और वायु प्रवेश के लिये पर्य्याप्त संख्या में बनाये हुए हैं। द्वारों पर तो किवाड़ लगे रहते हैं परन्तु खिड़कियों में प्रायः कपड़ा ही लटका दिया जाता है। कारण यह है कि यहां शीशा कम मिलता है।

इस स्थान से चलते समय कतिपय छोटी-छोटी नदियां और नाले मिलते हैं। इनके आसपास हरी-हरी घास के होने के कारण चंवरगाय बहुत अधिक रहती हैं। मध्यान्हकाल में इस मार्ग में भी धूप तीव्र होती है परन्तु हम लोग अपने पूर्ण वस्त्रों से भली प्रकार लिपटे हुए ही चले। हां, तिब्बती लोग इस धूप में अपने वस्त्र ढीले ढाले कर लेते हैं और कुछ लोग तो मुदित मन अपने विशाल वक्ष स्थल को नग्न कर सूर्य तापते हैं। वास्तव में यह लोग इसी शीत-प्रदेश में प्रसन्नता से विचरण करते हैं। इनके लिये

भारत जैसे देश में ग्रीष्म-ऋतु में सांस लेना भी असम्भव है। बरखा से लगभग ७ मील चलकर बुन्दू नामक स्थान पर जो कि धारचीन के समीप ही है—जहां से कैलाश परिक्रमा का प्रारम्भ होता है—विश्राम किया।

इस स्थान से कैलाश-दर्शन भी होता है। इस पवित्र देवालय के दिखाई पड़ते ही। शिव-स्तुति करते हुए हमारा दल नतमस्तक हो मूर्तिवत् स्थित हो गया। आसपास के सभी पर्वतों में कैलाश उच्चतम शिखर है। कुछ के अनुसार इसकी ऊंचाई २२०२८ और कुछ के अनुसार २२६८० फीट है परन्तु इसकी यथार्थ ऊंचाई किसी को भी ज्ञात नहीं। आसपास के कृष्ण-वर्ण पर्वतों में कैलाश-शिखर हिमाच्छादित उच्चतम शिखर है। यह श्वेताम्बरी त्रिकोणाकार मन्दिर समान विशाल रूप पृथक दृष्टिगोचर होता है। एक ओर बर्फ में कटी हुई सीढ़ियां सी बनी हुई प्रतीत होती हैं मानो कैलाश-शिखिर पर चढ़ने के लिये प्राकृतिक जीना बना हो। इस स्थान पर कैलाश की शोभा बड़ी मनोरम है। यहां से परिक्रमा का प्रारम्भ होता है। मार्ग में पांच प्रसिद्ध बौद्ध मठ पड़ते हैं जिनका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

कैलाश के दर्शन परिक्रमा में भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न स्वरूप में होते हैं जिन सब का मर्मस्पर्शी वर्णन "कैलाश"

नामक अध्याय में वर्णित है। कैलाश की सुरम्य दैवी शोभा चित्त को इतना प्रभावित कर देती है कि धर्म-वृत्ति के हिन्दू तो दर्शन-मात्र में ही सर्व मनोकामनाओं की पूर्ति मानते हैं।

---

मर्म स्पर्शी वर्णन

१४

# कैलाश

कैलाश पर्वत निकट के अन्य श्याम रूप पर्वतों में सर्वोच्च पर्वत है। यहां हिम का नाम केवल कैलाश के साथ लगे पर्वतों के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। इसकी चोटी पर हिम की एक लम्बी झोंपड़ी सी रखी हुई अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त सभी श्याम रूप पर्वत कैलाश के, दानव-तुल्य भयंकर रखवारे जान पड़ते हैं। इस प्रकार सुरक्षित, धवल वेशधारी, कैलाश शिखर अपने निम्न भाग में चौकोर और ऊपर से मन्दिर समान गोलाकार बना है। कैलाश पूर्ण रूप से शिव मन्दिर का आकार

है जिसको आदर्श मान कर समस्त संसार में मनुष्य ने शिवालय निर्मित किये हैं। इस चौकोर और गोलाकार के जोड़ पर चारों ओर एक काला चिन्ह है जो ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे लोहे की जंजीर बंधी हो। इस के विषय में एक कथा प्रचलित है कि लंकापति रावण जब शिव भक्ति में पूर्ण कैलाश के निकट पूजा करता था तो उसने अपनी भुजाओं पर अनेक बार कैलाश शिखर को उठा लिया था और पुनः वह उसको पूर्ववत स्थापित कर देता था। इस प्रकार इस जोड़ के स्थान पर यह काला चिन्ह पड़ गया है।

कैलाश के सर्व प्रथम दर्शन बुन्द स्थान से करके परिक्रमा के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग में धारचीन, जंगड़ा शिरलुंग, छुकड़म बोरची गुम्फा होते हुए डिडफू गुम्फा पर आकर पड़ाव करते हैं। इन सब बुद्ध मठों का अपना सविस्तार वर्णन तो इनके उपयुक्त स्थान पर किया गया है।

"कैलाश" की परिक्रमा के प्रथम दिवस प्रत्येक स्थान से भिन्न भिन्न रूप में दर्शन होते हैं। कहीं त्रिकोणाकार मिश्र देश के पिरैमिड जैसा तो कहीं से विशाल मन्दिर समान और कहीं चौकोर चार दिवारी पर एक सुन्दर त्रिकोणाकार कलस धरा प्रतीत होता है। यह सर्वत्र बड़ा मनोहर और गम्भीर लगता है। इसकी महिमा और शोभा का बखान ही क्या! मनुष्य इस के सम्मुख चित्र लिखा सा रह जाता है। इसकी मूकप्रशंसा में गद्गद् हृदय हो मुक्त कण्ठ से कैलाशपति की

जय बोल उठता है। रास्ते की सारी थकान उतर जाती है और समझता है कि सब संकट इस आनन्दमय दर्शन के सामने तुच्छ है। १७ हजार फीट की ऊँचाई चढ़ाई की थकान, शरीर जीर्ण दशा, तीव्र वायु का दुख, कुछ ज्वर और सिर पीड़ा, सबकी सब भूल कर शरीर में नव-स्फूर्ति सी दौड़ने लगती है। केवल एक विचार में मग्न हो हृदय उल्लसित हो उठता है। इस स्थान पर जहां न कोई वृक्ष न पशु न पक्षी और न नदी प्रवाह के कल कल नाद के अतिरिक्त किसी प्रकार की ध्वनि ही है। कैलाश शिखर के सिवा और है ही क्या? इस शान्त रमणीय स्थान में आत्म-चिन्तन के लिये परम योगी और परम भक्त पूर्वकाल में तपस्या के लिये यात्रा किया करते थे। ये कैलाश और मानसरोवर का निकटस्थ स्थल प्राचीन कालीन ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों की तपोभूमि रहा है। रामायणकालीन एक प्रसिद्ध कथा है, कि राक्षसताल जो मानसरोवर के सम्मुख ही उससे भी विशाल ताल है—के तट पर महाबली रावण ने अनेकों बार घोर तपस्या की थी। इस सुन्दर तपोभूमि की स्तुति में कवि लोग तो अपनी लेखनी का सारा चमत्कार अन्तिम सीमा को पहुँचा देते हैं। महाकवि तुलसीदास तो कहते हैं:—

हरि हर विमुख धर्म रत नाहीं।
ते नर तहां न सपनेहुं जाहीं॥

संस्कृत साहित्य में कैलाश को मेरु नाम से सम्बोधित किया है। संस्कृत का निम्न भावार्थ का एक उद्धरण है कि जम्बू द्वीप के केन्द्र में विविध रंग से रंजित सुन्दर मेरु पर्वत है जो पूर्व दिशा में ब्राह्मण समान श्वेत, दक्षिण में वैश्य तुल्य पीत, उत्तर में क्षत्रिय समान रक्त और पश्चिम में शूद्रवत् कृष्ण वर्ण है। मेरु शिखर ब्रह्म नगरी है जहां पर पवित्र गंगा विष्णुपाद से निकल कर चन्द्रमा को धोती हुई, आकाश से उतर कर चहुं ओर इस ब्रह्म नगरी की प्रदक्षिणा कर चार महानदियों में विभक्त हो जाती है। उत्तर में सिन्धु नदी है जिसे तिब्बत में सिंहचुम-कम्बा अर्थात् सिंह मुख अथवा मानव शौर्य्य कहते हैं। पूर्व में सीपों या ब्रह्मपुत्र है जिसको तिब्बत में तमजफ-कम्बा अर्थात अश्वमुख अथवा घोड़े की उत्तमता कहते हैं। पश्चिम में सतलज है जिसे लाड्डु-कम्बा अथवा नन्दी मुख—जो तीव्र धारा प्रवाह का द्योतक है—कहते हैं। और दक्षिण में करनाली जिसको माच्छू-कम्बा अर्थात् मयूर-मुख जो स्त्री सौंदर्य का चिन्ह समझा जाता है कहते है। इनमें तीन नदियां भारत में प्रवेश करती हैं और करनाली तिब्बत में ही विहार करती रह जाती है। इस मनोरम तपोभूमि में फलफूल आदि कुछ भी नहीं मिलते परन्तु यदि कन्द मूल आदि कहीं प्राप्त भी हों तो साधारण यात्रियों को इनका ज्ञान नहीं।

यहां के गिने चुने, भूले भटके वनवासी अधिकतर मांस पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। इनका विशेष व्यवसाय चंवर गौ पालना, भेड़ बकरी चराना तथा ऊन कातना है। यहां पर केवल बौद्ध मतावलंबियों के मठों के अतिरिक्त अन्य कोई मकान या निवास स्थान दृष्टिगोचर नहीं होते। यहां के निवासी प्रायः भ्रमक समान इधर उधर कपड़े की झोंपड़ियों में अर्थात् डेरे और तमोटियों में बसे हुए दृष्टिगत होते हैं। इन्हें वो स्वेच्छा से उखाड़ और गाड़ लेते हैं। प्रायः वो नदी नाले, सोत या किसी भी जलाशय के समीप घास वाले जंगलों में अपने विश्राम के हेतु डेरे लगाते हैं।। वैसे सर्वत्र मैदान ही मैदान है। यहां की ऊंचाई विशेष होने के कारण वायु यहां वेग से चलती है और जल-वर्षा के स्थान पर ओले अथवा हिम की ही वृष्टि होती है।

इस स्थान से कैलाश के दर्शन मात्र ही नहीं होते अपितु स्पर्श करने की भी हार्दिक इच्छा होने लगती है। इस स्थान से कैलाश लगभग तीन मील ज्ञात होता है। मार्ग में हिम की अधिकता है। कतिपय स्थानों पर एक डेढ़ फ़ीट बर्फ में पैर सरलता से धंस जाता है। बर्फ़ का प्रसार और विस्तार इतना अधिक है कि दो तीन फ़र्लांग तक कई बार बर्फ़ पर पैदल ही चलना पड़ता है। अन्त को सामने एक श्वेतवर्ण की चादर सी देख पड़ती है। इसका

दृश्य परम मनोरम है। यही स्थान सिन्धु नदी का उद्गम है। यहां एकत्रित हिमराशि से सिन्धु नदी प्रकट होती है। कैलाश-स्पर्श के प्रयत्न में इस अनन्त हिम शिला पर अब एक एक पग गिन गिन कर रखते हैं। कुछ थोड़े समय इस प्रकार व्यायाम कर कर लेने पर ये प्रतीत होने लगा कि अब अधिक आगे बढ़ना जीवन हीसे हाथ धोना है। अब स्पष्ट ही ज्ञात होता था कि आगे चलना हिम में समा जाना ही है। अतः इसी स्थान से शिव स्तुति गान कर तथा अर्चना और प्रार्थना कर वहां से लौटना ही निश्चय किया।

दूसरी प्रातः परम भक्ति-भाव से नत मस्तक हो, निज नेत्र द्वार से आनन्द शांति और सौन्दर्य के आगार कैलाश की स्मृति हृदय में प्रविष्ट करा उसकी परिक्रमा को अग्रसर हुए। इस स्थान पर सूर्य प्रकाश से परम प्रकाशित कैलाश के अन्तिम दर्शन थे। इसके पश्चात् सतत चार मील चढ़ाई है। इस ओर चलते ही यह पवित्र पर्वत नेत्रों से ओझल होजाता है। इस प्रकार चार मील चढ़ाई कर गौरी कुण्ड पर पहुँचे। मार्ग में कतिपय स्थानों पर बर्फ़ पर चलना पड़ता है। इस मार्ग की चढ़ाई चढ़ते समय सांस लेने में भी कठिनाई प्रतीत होती है। और सिर दर्द से हृदय व्याकुल होजाता है। यह चढ़ाई १८६०० फ़ीट पर समाप्त होती है। इस उच्च शिखर पर एक विशाल "छुरटन" बना है जिसके मध्य में एक ऊंची पताका फहराती

है। उस झंडे के डंडे के चारों ओर रस्सियां बंधी हुई हैं। जिनमें तिब्बती लोग श्रद्धा और भक्ति से नाना रंग की झंडियां बांधते हैं। इस उच्च शिखर पर सूर्यताप में सुशीतल वायु सेवन करने से नेत्र कुसुमवत विकसित होजाते हैं और हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। सारे शरीर में विद्युत समान रुधिर प्रवाहित हो नवशक्ति संचारित करता है। इस प्रकार मन, भावों से तरङ्गित हो हृदय को आशा और उत्साह से पूरित करता है। वास्तव में इस स्थान पर प्रतीत होता है, कि ऊंचे को देख कर मनुष्य ऊंचा ही ऊंचा उठता है, और नीचे को देखकर डूबता चला जाता है। जहां उच्च पर्वत शिखर नवजीवन तथा उत्साह का संचार करता है, वहां सागर पर हृदय भयभीत हो डूबता हुआ प्रतीत होता है। इस उच्च शिखर से दाईं ओर लगभग एक फर्लांग चौड़ा और तीन फर्लांग लंबा दर्पणवत् चमकता हुआ हिमाच्छादित कुण्ड है। दो तीन फीट मोटे बर्फ के ढकने के नीचे जलाशय है। केवल एक ओर हिमरहित जल दिखाई पड़ता है। इस कुण्ड में गोता लगाना असीम साहस अथवा दुस्साहस का कार्य है। उस समय के शीत का अनुभव यहां से करना असम्भव है।

इस जल में हाथ डाल कर निकालना भी दुष्कर है। फिर शरीर को डाल कर कौन शून्य करने का साहस कर सकता है परन्तु हृदय की श्रद्धा और भक्ति से

एक विचित्र उष्णता और उत्साह उत्पन्न हुआ जिसके आवेश में हम लोग उस जल में प्रवेश कर बड़े साहस से एक या दो गोते लगा अत्यन्त शीघ्रता से बाहर निकले। इस जल से शरीर का बाहर निकालना वास्तव में मृतवत् शरीर का हिलाना था। हम में से एक वृद्ध पंडित तो बेसुध होगये। वो तो जल से बाहर निकलते ही पथ प्रदर्शकों की चेतावनी के विरुद्ध उच्च स्वर से उमापति की जयघोष करते ही मृतवत् होगये। शीत के कारण उनका शरीर निर्जीव सा प्रतीत होने लगा। उनके उच्चनाद से जो वायुमण्डल में क्रान्ति तथा हलचल मची उसका इस ऊँचाई पर एक ही परिणाम होता है। पूर्ण प्रकाशित सूर्य मेघाच्छादित हो प्रकाश को अन्धकार में परिणत कर देता है। पुनः हिम वृष्टि होने लगती है। हमारी यात्रा के इस अन्तिम स्थान पर हिम वृष्टि और एक साथी की मूर्च्छा ने हमें विपत्ति में डाल दिया। हम सब लोग यथा तथा इस उच्च शिखर से नीचे की ओर उतरने लगे। अपने अपने प्राणों की रक्षा के हेतु हम वेग से उतर रहे थे और सिर पर घटाटोप बादल हिम वर्षा करते चले आते थे। इस प्रकार तीन मील बिना विश्राम किये हम उतरते चले आये। हमारे वृद्ध साथी को तिब्बती सेवकों ने हाथ पकड़ कर शव समान नीचे उतार ही लिया। उतर कर आये हुए १५००० फीट ऊँचे स्थान पर इस मृतवत वृद्ध में पुनः जीवन आ गया और ये प्रसन्न मन अस्थायी

मृत्यु से जीवित हो कैलाशपति की स्तुति कर गायन और नृत्य में उन्मत्त हो गया।

लगभग साढ़े चार मील साधारण चढ़ाई उतराई कर जिङफू गुम्फा आये। इस यात्रा का यह अन्तिम बौद्ध मठ है। यहां से दो तीन मील के अन्तर से सतलज और एक पर्वतीय नाले के संगम पर हमने अपनी परिक्रमा समाप्त की। सतलज सतधारा से भी सम्बोधित की जाती है। गौरीकुंड से उतरते समय ये मिलती हैं और उससे कुछ ही ऊपर सात धाराओं के मिलने से ये नदी का रूप धारण करती हैं।

यह दिन हमारी यात्रा के कष्ट और आनन्द की सीमा की पराकाष्ठा का द्योतक और अन्तिम ही था। हमने आज कैलाश के अन्तिम दर्शन किये। यात्रा के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हुए तथा परम आनन्द और भयंकर भय का अनुभव किया। इन सब के पश्चात सुख और आनन्द से हमने अपनी यात्रा का ध्येय पूर्ण किया और इसी समय बड़े आनन्द और निश्चय से हमारी यात्रा के संयोजक ने मुक्त कण्ठ से उच्चारण किया कि "यात्रा पूर्ण होगई।"

---

## बौद्ध भिक्षुओं के निवास

१५

# गुम्फायें या बौद्ध मठ

तिब्बत में बौद्ध मठ को गुम्फा कहते हैं जिसके अर्थ एकान्त स्थान के हैं। इनमें बौद्ध भिक्षुक और भिक्षारिणियां रहती हैं। प्रत्येक बौद्ध मठ में एक मठाधीश लामागुरु होता है जो दलाई लामा द्वारा ल्हाशा से भेजा जाता है। यह लामा गुरु मठ का सर्वाधिकारी होता है और इसकी आज्ञा सर्वमान्य होती है। ग्रामीण लोग सब सेवा का कार्य करते हैं तथा भोजन आदि आवश्यक सामग्री भी भेंट करते हैं। ग्रामीण स्त्री पुरुष सभी सेवा कार्य करते हैं। यह स्थान गन्दगी और अन्धकार के भण्डार हैं। इन में बुद्ध, राम

सीता और मठ के संस्थापक दलाई लामा आदि की प्रतिमाएं रहती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से दैत्य और दानवों की बृहत् मूर्तियां भी स्थापित की हुई हैं। इन में मुख्य पूजनीय देव मूर्तियों के सन्मुख घी के दीपक सदैव एक पंक्ति में जलते रहते हैं। यात्री लोग भी पूजन अर्चन में घृत-दीपक जला कर आरती उतारते हैं। इनके पीछे स्वर्ण और रजत के सुंदर पात्रों में केसर रंजित जल भरा हुआ रक्खा रहता है। यात्री लोग प्रायः तिब्बती सिक्का तनखा और अर्द्ध तनखा चढ़ाते हैं।

इन मठों में पाली भाषा का एक छोटा सा पुस्तकालय भी होता है जिसमें पुस्तकें खुली हुई अलमारी में लगी रहती हैं जो प्रायः एक फ़ुट चौड़ी और डेढ़ दो फ़ीट लम्बी होती हैं। इनका प्रत्येक पत्र अलग अलग होता है। इन पर लेख पाली लिपि में बड़े सुंदर हस्तलिखित अक्षरों में होते हैं। इनका काग़ज़ हाथ का बना हुआ और मोटा होता है। इनकी रक्षा के लिये काष्ठ के पतले चपटे तख्ते ऊपर नीचे लगे रहते हैं। यह सब धार्मिक ग्रंथ हैं। मठाधीश तथा अन्य मठवासी इन पुस्तकों का प्रायः स्वाध्याय करते हैं।

भिक्षु और भिक्षुणियां ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करते हैं। नव-आगन्तुक आठ वर्ष की आयु पर्य्यन्त चुंगचुग कहलाते हैं। तदुपरान्त परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने पर वह

डवस कहलाते हैं। भिक्षा वृत्ति इनका स्वाभाविक कर्म है। कोई भी यात्री जो मठ में जाता है उससे लौटते समय यह भिक्षा मांगते हैं। क्षुधा निवारण के लिये भोजन याचना इनकी मुख्य मांग रहती है। यह झूठा और बचा हुआ भोजन भी सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। यह लोग मांस आदि पर जीवन निर्वाह करते हैं परन्तु अपने हाथ से पशु बध नहीं करते। इनकी दशा सब प्रकार दीन हीन है। इनके वस्त्र आदि भी अत्यन्त मैले कुचैले होते हैं।

यह लोग भोजन के पूर्व और पश्चात् सम्मिलित प्रार्थनायें करते हैं। ढोल दुन्दुभी आदि वाद्य प्रत्येक मठ में प्रार्थना के साथ बड़े ही मधुर स्वर में बजाये जाते हैं। इनके पास प्रायः तलवार, बरछी आदि अनेक अस्त्र शस्त्रों का अच्छा संग्रह रहता है। भिक्षु लोग और अन्य धार्मिक वृत्ति के मनुष्य प्रायः एक पीतल का गोलाकार चक्र हाथ में रखते हैं जिसको वह हर समय घुमाते रहते हैं। इस चक्र पर पवित्र जप मन्त्र,

"ओ३म् मणि पद्मह्रुं"

अंकित रहता है। इस चक्र के घुमाने का तात्पर्य इस पवित्र मंत्र का जप करना होता है। कैलाश और मानसरोवर के चारों ओर के सभी मठ प्रायः एक समान हैं। लगभग ९ मठ मानसरोवर के चारों ओर हैं जिनमें से गुसल और

जीजू गुम्फा में हम लोग भी गये। हमने कैलाश के चारों ओर ६ प्रसिद्ध गुम्फायें देखी। अर्थात् धारचीन, जगड़ा, शिरलुंग, छुकुरीमचीर्चो, जिडंफू और भंडफू। इन में कुछ न कुछ विशेषता एक दूसरे से रहती ही है। जैसे छुकुरीम-चीर्ची गुम्फा में मठ की प्रधान प्रतिमा के सन्मुख बहुत विशाल गजदंत का जोड़ा रखा हुआ है, और मठ के ऊपर सुंदर स्वर्ण कलश सुशोभित है।

उपरोक्त सबही गुम्फाओं में तकलाकोट की गुम्फा जो शिवलिंग नाम से प्रख्यात है, सबसे बड़ी और श्रेष्ठ है। इसमें तीन सौ के लगभग भिक्षु और भिक्षुणियों के रहने का प्रबन्ध है। जिस समय हम इसमें पहुँचे तो लगभग ५० भिक्षुणी तथा १०० भिक्षुक थे। इन सबका अधिपति लामा गुरु और मठाधीश ल्हाशा से आता है। प्रायः लामा गुरु वृद्ध और अनुभवी विद्वान ही दृष्टिगत हुए। इनकी बाह्य आकृति से ही इनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होजाती है। इनकी आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया जाता है। यह अपने मठवासी लोगों को उनके अपराध पर दंड भी देते हैं। मठों में व्यभिचारी को कठिन दंड दिया जाता है। यह मठ सुशासित और सुसंगठित है। मठ का भवन बहुत विशाल और बड़ा आकर्षक है। इसके ऊपर सुन्दर स्वर्ण कलश इसकी शोभा को बहुत बढ़ा देता है। इसके विशाल द्वार बहुत सुन्दर और कलाकौशल के परिचायक हैं। प्रवेश

द्वार से घुसते ही चौड़ी सी गली को जाना पड़ता है। जिसके दोनों ओर बड़े बड़े अनेकों चक्र लगे हैं। जिन पर बौद्ध पवित्र मंत्र अंकित है। जिन्हें यात्री लोग प्राय: घुमाते हैं। यह क्रिया भारत के मंदिरों में घंटी बजाने के समान ही है। यह मठ दो मंजिला है। इसमें चारों ओर भिन्न भिन्न उपयोग के लिये आवश्यक भवन बने हैं और मध्य में एक विशाल तथा सर्वोच्च भवन है जिसमें चारों ओर दीवारों पर अन्य प्रकार के सुन्दर सुन्दर चित्र कपड़ों पर बनाकर लटकाये हुए हैं तथा दीवारों पर चित्रित किये हुए हैं। प्राय: यह चित्र बुद्ध के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन करते हैं। इन्हीं के सहारे सहारे अनेकों देव दैत्य और दानवों की विशाल मूर्तियां स्थापित हैं। सबसे अन्दर की ओर मुख्यत: बुद्ध की एक बड़ी तेजमयी पीतल की प्रतिमा है। सब गुम्फाओं के समान यहां पर भी अन्धकार का अखण्ड साम्राज्य है। अनेकों घृत दीपक निरंतर जलते रहते हुए भी हमारे लिये टौर्च का जलाना अनिवार्य होगया।

सबसे अन्तिम गुम्फा जो हमने इस यात्रा में देखी वह तकलाकोट से ९ मील की दूरी पर खोजरनाथ की है। इसका मार्ग प्राय: निर्मित और समतल है। इस मार्ग में नदियों पर पुल प्राय: अपवाद स्वरूप ही मिल सके। मार्ग में कतिपय हरे भरे और समृद्धि शाली ग्राम हैं। खोजरनाथ

गुम्फा, वेग से बहती हुई काली नदी के तट पर स्थित है। इस मठ में कई विशाल राजमहल समान सुन्दर भवन हैं। एक भवन के मध्य में राम सीता और लक्ष्मण की प्रतिमाएँ हैं। इसके पश्चात् सप्त ऋषि और तदनन्तर अनेकों ही बृहत् काय दैत्य और दानवों की विशाल प्रतिमाएँ स्थापित हैं। चित्र, चित्रकारी, दीपक, वाद्य आदि अन्य गुम्फाओं के समान ही इसमें भी विद्यमान हैं। इस विशाल भवन के अन्दर छोटे छोटे और भी कई गृह निर्मित हैं जिनमें देवी और देवताओं की प्रतिमाएं पूजित हैं। दूसरे भवन में बहुत विशाल राजसभाभवन समान पूज्य गृह हैं जिसके मध्य में पूज्य आराध्यदेव की मूर्ति स्थित है। इसके सन्मुख दो पंक्तियों में एक दूसरे के सामने बैठ कर जप पूजा तथा भोजन करते हैं। भोजन के पूर्व और पश्चात् एक ही स्वर में नित्य ही कुछ मन्त्रों का जप करते हैं। उस समय ढोल आदि भी बजाते हैं। भोजन प्रायः चाय सत्तू और मांस का ही होता है। चाय तो दिन में कई बार यह लोग पीते हैं। परन्तु सब लोग भोजन एक साथ ही बैठ कर करते हैं। इस मठ में भी धीमी घृत दीपकों की ज्योति ही धार्मिक प्रकाश प्रसारित करती है परन्तु यह प्रकाश अन्धकार को तनिक भी मन्द नहीं कर पाता। इसी विशाल भवन के ऊपर की मंजिल में एक बड़ा पुस्तकालय है। जहां पर लामा या भिक्षु लोग स्वाध्याय करते हैं यह पुस्तकालय हमारी यात्रा

में सबसे अधिक पूर्ण और महत्व का रहा। यहां के मठवासी भली प्रकार सुसंगठित और भली प्रकार देशाटन किये हुए हैं। इनमें कुछ लोग हिन्दी भी जानते हैं और भारत के अनेकों मुख्य मुख्य नगरों में हो आये हैं। इस मठ का कला कौशल कई संस्कृतियों का सुन्दर सम्मिश्रण है। भारतीय बुद्धकालीन तथा नैपाली कला का तो स्पष्ट प्रदर्शन होता ही है। यहां की प्रतिमायें सब ही नैपाल निर्मित कही जाती हैं।

तिब्बत को मठों अर्थात गुम्फाओं का देश कहना अत्युक्ति न होगा। तिब्बत का वर्णन प्रायः यहां की गुम्फाओं का चित्रण मात्र ही है। कारण, यहां के लोगों का जीवन और आचरण इन मठों द्वारा ही नियमित और संचालित होता है। इनके धार्मिक रहस्य का जो इनके जीवन का सार और आधार है यह मठ ही प्रदर्शन, पालन और रक्षण करते हैं।

---

१६

# 'तिब्बत में'

भारत की सीमा लीपू लेक पर पार कर तिब्बत प्रदेश में प्रवेश करते हैं। इस घाटी से चार मील चल कर पाला नाम की चौकी पड़ती है। यहीं से तिब्बत का ऊबड़ खाबड़ पथरीला मैदान प्रारम्भ होता है। तिब्बत की मुख्य विशेषतायें यहां का शीत और डकैत हैं जो सदैव मृत्यु-तुल्य सिर पर मंडराते रहते हैं। यहां के जल तथा वायु बहुत तीव्रगामी होते हैं। यहां प्राय: गृहहीन भ्रमक लोग भेड़ बकरी पालते हैं और उनके ऊन को कात बुन कर उदर पूर्ति करते हैं। यहां मांसाहार तो प्रत्येक मनुष्य

करता है । मदिरा और चाय यहां का नित्य का पेय है। इन लोगों में सुन्दर वस्त्र पहिनने का एक विशेष शौक सा जान पड़ता है। यहां बुद्ध धर्म का एकतंत्र राज्य है। सारे ही पर्वतीय तिब्बत प्रदेश में न वृक्ष, न पक्षी और न किसी प्रकार की व्यवस्थित बस्ती ही है। प्रायः लोग 'यत्र सायं गृहोमुनि' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। इनके न कोई निश्चित घर हैं और न किसी का डर। घूमते फिरते जहां कहीं जल का सहारा और चारे का बाहुल्य देख पड़ा वहीं पर अपनी दुपाला तमोटी गाड़ दी और विश्राम किया। यहां पर यात्रियों को न भोजन और न रहने को भवन ही प्राप्त हैं । फिर अन्य सुख सामग्री की कौन कहे। इस ओर यात्रा करने वालों को किसी समय भी अपनी भोजन सामग्री में कमी पड़ जाय तो भूखों मरने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहे।

यात्रियों को अपने विश्राम के लिये अपने साथही डेरे ले जाने पड़ते हैं। दुर्दैव से कभी यह डेरे न रहें तो रहने को मृत्यु मुख के अतिरिक्त और कोई स्थान न मिले। वैसे तिब्बत में कहीं भी जल वृष्टि नहीं होती परन्तु इस ऊंचाई पर तो हिम और ओले ही बरसते हैं। जल वर्षा न होने से ये कपड़े के अस्थायी घर तमोटियां, भी पर्य्याप्त होती हैं। इस ओर कोई सीमित और निर्मित मार्ग तो है ही नहीं साथ ही नदी और नालों पर पुल भी

नहीं बने हुए हैं परन्तु फिर भी तिब्बती नदी नालों में जल बहुत गहरा न होने के कारण तिब्बती लोग यथा तथा स्वयं तो पार हो ही जाते हैं साथ ही अन्य यात्रियों को भी पार उतार देते हैं घोड़ों आदि को तो पार होने में कुछ भी कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

तिब्बत की भूमि प्रायः समतल और बंजर है। यहां पर न बहुत ऊंचाई और न नीचाई है परन्तु भूमि सम तल और पाषाणयुक्त ही है। इस पाषाण भूमि में कृषि आदि का होना असम्भव सा है। यहां के पहाड़ कच्चे हैं। और बर्फीले पहाड़ सदा होते भी ऐसे ही हैं। इसके कई कारण हैं। एक मत है कि हिमाच्छादित होने के कारण पर्वतीय पाषाण भी पिघल कर टुकड़े टुकड़े और मटियाले हो जाते हैं। दूसरा यह विश्वास है कि हिमाच्छादित पर्वत वह उच्च शिखर हैं जो किसी समय महासागर के जलसे सर्वथा प्लावित थे और कालचक्र से यह जल से बाहर स्थल पर सर्वोच्च पर्वत रूप दृष्टिगत होने लगे। परन्तु यह चिरकाल जल-प्लावित होने के कारण अपने कठोर पाषाण रूप से कोमल मिट्टी आदि से मिश्रित होकर कच्चे हो गये इसी प्रकार अन्य अनेकों कारण बतलाये जाते हैं। कारण जो भी हो यह तो सत्य है कि तिब्बती पहाड़ कठोर पहाड़ी चट्टानें नहीं, अपितु मिट्टी और पत्थर मिले कच्चे पहाड़ हैं।

तिब्बत का सारा प्रदेश निर्जीव और शून्य है। यहां न कुछ प्राकृतिक सौंदर्य है और न अन्य किसी प्रकार के मनो-विनोद की सामग्री ही प्राप्त होती है। यह नीरस और मरुस्थल समान शुष्क और भयानक प्रतीत होती है। अनेकों बार मनुष्य भयभीत और एकाग्रचित्त हो बावला सा प्रतीत होता है। यहां का जलवायु अत्यन्त शीतल है। शरीर का चर्म काला पड़ जाता है और बहुत बार ठंड से फट कर रुधिर प्रवाहित होने लगता है। यहां स्नान करना असम्भव सा ही है। प्यास तो प्रायः लगती ही नहीं और क्षुधा तीव्र हो जाती है। प्रायः मनुष्य स्वस्थ्य प्रतीत होता है परन्तु नित्य एक ही प्रकार का और वह भी अपूर्ण भोजन पाने से अनेकों स्वादों की इच्छा होती है। परन्तु नित्य के निर्धारित भोजनों में अरुचि हो जाती है। अधिक ऊँचाई पर धारचीन से आगे क्षुधा कुछ मर सी जाती है और भोजन में अरुचि हो जाती है।

तिब्बत में कहीं जलवायु बहुत प्रिय और मधुर तथा विशेष स्वास्थ्यप्रद प्रतीत नहीं होता। हां, मानसरोवर के तट पर मन-भावनी जीवनदायिनी मंद मंद शीतल वायु बड़ी ही सुखदायी लगती है। सूर्य प्रातः बहुत शीघ्र उदय होता है परन्तु वह पूर्ण शक्ति से प्रकाशित तो बहुत दिन चढ़े ही हो पाता है। कारण आकाश में प्रातः से बादल उसे घेर लेते हैं। दिन चढ़े सूर्य ताप तीव्र हो जाता है परन्तु फिर भी गरमी नहीं लगती और

ग़ीतल वायु के वेग में सूर्यताप शक्ति हीन सा ही रहता है। इस प्रकार यहां ठंड का ही अखण्ड राज्य स्थापित है। जल यद्यपि मधुर और स्वादिष्ट लगता है परन्तु शीतल होने के कारण कुछ घूंट भी पीने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यदि तनिक प्यास लगी भी तो दो चार घूँट ही उसे तृप्त कर देते हैं। यह स्थान साहसियों के खोज और पर्यटन का है, न कि गरमियों से डर कर भागे हुओं के लिये ठंडी हवा खाकर मौज उड़ाने का। यह स्थान कष्टकर ही नहीं अपितु भयंकर है। इस सब का अर्थ उत्साही युवकों का साहस भंग करना नहीं और नाहीं खोज करने की तथा नये देशों के भ्रमण की प्रबल प्रवृत्ति को दबाना है। परन्तु यह वास्तव में साधारण स्वभाव के और दुर्बल साहस के लोगों के जाने की जगह नहीं और नाहीं उनको दुस्साहस कर हतोत्साह होना चाहिये।

तिब्बत की सारी भूमि सर्वथा निर्मल और स्वच्छ है। यहां पर मक्खी मच्छर या खटमल का नाम भी नहीं। कोई पशु पक्षी भी देख नहीं पड़ता और नाहीं, मनुष्य, भेड़ बकरी के अतिरिक्त, किसी अन्य जीव जन्तु के दर्शन होते हैं। इस प्रकार इस पथरीले महाक्षेत्र में स्वच्छता का साम्राज्य देख पड़ता है, परन्तु यहां के निवासी अपने निवास स्थानों को भेड़ बकरियों की हड्डियों और उनके मल मूत्र आदि से मैला और गन्दा रखते हैं। उनकी प्रत्येक

गुम्फाऐं डेरा आदि गाढ़ने का स्थान तथा अन्य निवास स्थान सबही पूर्णतया मैले कुचैले देख पड़ते हैं। और कहीं भी सफ़ाई व झाड़ू आदिका प्रबन्ध नहीं है। तकलाकोट जैसी बड़ी मंडी की नालियां भी बिना झाड़े बुहारे गंदगी से सड़ती हैं ।

तिब्बत में जनसंख्या बहुत थोड़ी और वह भी अस्त व्यस्त सी है । ये लोग जहां तहां दो चार मकान के छोटे गांव में या चलते फिरते उजाड़ डेरों में रहते हैं । यहां के असहनीय विषम और अतिशीतल जलवायु के कारण आबादी घनी हो ही नहीं सकती । इसी कारण यहां के लोग बहुत कठोर और कष्ट सहिष्णु होजाते हैं। यहां के लोग विचित्र श्रेणियों में विभक्त हैं। बीद्या, दावा, तथा नीक्रो ये तीन श्रेणियां हैं । बीद्या तिब्बत के व्यौपारी, दावा कृषक और नीक्रो चोर, ठग और मंगते होते हैं । इनके अलावा प्रायः लोग भेड़ बकरियों के पालने। ऊन कातने और बुनने में ही लगे रहते हैं। इन लोगों को यहां का जलवायु इतना रुचिकर और हितकर प्रतीत होता है। कि वह शीतकाल में भी गर्ब्यांग से आगे भारतवर्ष में भी प्रवेश नहीं करते। कोई कोई शरद ऋतु में भारत भ्रमण का साहस कर जाता है और ग्रीष्म ऋतु में तो तिब्बतियों का भारत प्रवेश असम्भव ही है।

यहां के लोगों के वेश, भाषा, और भूषा सब ही विचित्र और विभिन्न हैं। उनकी भाषा तिब्बती है। जिनका एक अक्षर भी हम समझ नहीं पाते। वहां पर पढ़ाई लिखाई का सर्व साधारण के लिये कोई भी प्रबन्ध नहीं है। केवल बौद्ध मठों में पढ़ाने लिखाने का प्रबन्ध है। साधारणतया यहां मनुष्य अशिक्षित हैं। उनके रहन सहन के ढंग से वह जंगली से देख पड़ते हैं। उनमें स्वच्छता और सफ़ाई का नाम भी नहीं। उनके मूंछ और दाढ़ी उगते ही नहीं। इसलिये वहां पर नाई और उस्तरा भी नहीं मिलता। पुरुष और स्त्री की आकृति एकसी ही देख पड़ती है। यहां के लोग सिर के भी बाल नहीं मुंडवाते। यह इनकी प्राचीन दास्य स्थिति के परिचायक हैं। इस विषय में कहा जाता कि मंचूरिया वालों ने तिब्बतियों को परास्त किया था। और इसी कारण तिब्बती लोगों को दण्ड के स्वरूप सिर के बाल रखने पड़ते थे। केवल बौद्ध भिक्षु और गुरु आदि ही सिर के बाल कटवा देते हैं।

वहां पर स्त्री और पुरुष दोनों ही एक से वस्त्र धारण करते हैं। ऊन के बुने ऊंचे तले के लम्बे जूते पहिनते हैं जो उनके घुटनों तक पहुंचते हैं, और उनका लंबा चोगा सारे शरीर को पूर्णतया सुरक्षित रखता है। भेड़ की खालें विशेष गर्म होती हैं जिनके कपड़े बनवाये जाते हैं। व्यापारी लोग सुन्दर सुन्दर, रंग बिरंगे, भारतीय सूती तथा

रेशमी कपड़े मंगा कर पहनते हैं। उनके सर की टोपी चीन की जैसी सुन्दर बनी होती है जो बहुत मुलायम और बालों से भरपूर होती है। भेड़ के बच्चे मेमने की खाल की टोपियां भी बड़ी ही सुन्दर बनती है। यह वस्त्र पुरुष और स्त्री सब ही पहनते हैं। कटार रखना तो वहां नियम सा है। यहां के लोग भयानक प्रतीत होते हैं परन्तु वे निर्दयी और कठोर नहीं होते। यह लोग मनुष्य का मांस नहीं खाते। और नर बध अपनी शक्ति भर बचाते हैं। इन में एक विचित्र दयालुता पाई जाती है। वह अपने अधीनस्थ स्त्री और बच्चों को कभी भी डराते अथवा धम-काते नहीं हैं। यह परस्पर लड़ते झगड़ते भी नहीं। इनका सामाजिक जीवन प्रायः शांतिमय है, वैसे चाहे सन्तोष जनक भले ही न हो। इनमें कोई सामाजिक नियम और संगठन तो है ही नहीं यह तो एक प्रकार से स्वच्छद और उच्छृंखल बन पशु समान विचरते हैं।

साधारण सामाजिक जीवन असंगठित और असंतोष-प्रद है। एक स्त्री अनेकों विवाह कर सकती है। इसी प्रकार पुरुषों के जीवन, विवाह और मरण के विधान और विधिया, कोई विशेष आमोद प्रमोद या या दिखावट की वस्तु नहीं है। वह सन्तान-उत्पत्ति पर कोई विशेष आनन्दोत्सव नहीं मनाते। विवाह ऐच्छिक होता है और वर व कन्या के माता पिताओं की अनुमति ले ली जाती है।

परित्याग और पुनर्विवाह प्रचलित है। विवाह-संस्कार विशेष उत्साह और सजधज के साथ किया जाता है। मृतक को प्रायः गाड़ते हैं या नदी में बहा देते हैं, अथवा खुले मैदानों में फेंक देते हैं, परन्तु हिन्दुओं के समान जलाये नहीं जाते। सम्भवतः इसका कारण लकड़ियों का दुष्प्राप्य होना है। भोजन आदि में किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। छुआछूत का कुछ विचार नहीं करते। कुछ लोग अपनी जीवनवृत्ति अपनी ज्योतिष विद्या द्वारा कमाते हैं। एक तार पर मधुर तान गा गा कर यात्रियों को प्रसन्न कर भी कोई कोई पुरस्कार लेता हुआ मिल जाता है। यह वास्तव में भारत में सांरगी पर गाकर भीख मांगने वालों का अनुकरण है।

बौद्ध धर्म का सर्वत्र एक तंत्र साम्राज्य है। यहां की प्रजा इस धर्म में असीम श्रद्धा रखती है। यह धर्म प्रजा का ही नहीं वरन् राजसत्ता का भी है। बौद्ध धर्म से पूर्व बाहर के निवासी बहुत निर्दयी थे और उनका एक अपना ही सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी पौन या बौन अर्थात् पवित्र कार्यकर्त्ता कहलाते थे। इनका ईश्वर में विश्वास न था और बहुत घृणास्पद व भयानक मूर्तियों की पूजा करते थे। धर्म के नाम पर यह लोग बहुत अत्याचार करते थे। नरमेध यज्ञ भी कर डालते थे जिसमें मनुष्य का हवन करने में भी न हिचकते थे। उस

समय तिब्बती लोग नर घातक कहलाते थे। ऐसे पूर्व इतिहास पर बौद्ध मत का प्रचार हुआ। इसके आगमन पर पूर्व प्रचलित कुरीतियां और प्रथायें बन्द हो गईं। इसके साथ साथ ही दैत्य और दानवों की पूजा भी लुप्त हो गई। बौद्ध धर्म के विरुद्ध सब कृत्य पूर्णतया त्याग दिये गये। बौद्ध धर्म और बुद्ध की शिक्षाओं पर प्रचार किया गया। जिसके कारण यहां के लोगों का बुद्ध धर्म ही एक मात्र धर्म हो गया और इनके विषय में यह बात चरितार्थ होने लगी कि

एकहि व्रत और एकहि नेमा,
मन वच काय धर्म में प्रेमा ।

बौद्ध मत के प्रचार और प्रसार के साथ ही बौद्ध भिक्षुओं की जिन्हें यहां की भाषा में लामा कहते हैं, संख्या बढ़ने लगी। तब इन लोगों ने अपने पृथक पृथक मत स्थापित किये। इन मठों का संचालन इन में से ही चुने हुए लामा गुरु द्वारा होने लगा। पुनः सारे तिब्बत प्रदेश में लामा गुरु आदि के समूह का भिन्न भिन्न स्थानों पर मठ स्थापित कर बसना धार्मिक जीवन का आचरण और प्रचार करना यह सब सुसंगठित रूप में दलाई लामा के नेतृत्व में स्थापित होगया। दलाई लामा इस प्रकार सारे तिब्बत का पूज्य धार्मिक नेता के साथ साथ वहां का एकतंत्र शासक भी माना जाने लगा। इस प्रकार तिब्बत में धर्म और शासन

दोनों एक ही व्यक्ति के अधीन संचालित होते हैं। विभिन्न स्थानों में जहां जहां बौद्ध मठ और गुम्फाऐं स्थापित हैं वहां का धार्मिक व्यवस्थापक गुरु और पुजारी बना कर एक अनुभवी लामा ल्हाशा से केन्द्रीय दलाई लामा द्वारा भेजा जाता है। यह लामा मठ का संचालक और मठवासियों का अध्यापक तथा नागरिकों के प्रचारक और उपदेशक का कार्य करता है।

ऐसे प्रत्येक मठ में अनेकों मूर्तियां आराध्य देव दैत्य और दानवों की स्थापित हैं। इनके साथ साथ एक सुंदर पुस्तकालय भी संयोजित है। इनमें सामूहिक प्रार्थना आराधना और उपासना होती है। इनका भोजन भी सम्मिलित ही होता है। भोजन के पूर्व और पश्चात् विशेष मन्त्रों का एक स्वर में नित्य प्रति गान करते हैं। मठ के मध्यस्थ विशाल हाल में प्रधान मूर्ति के सम्मुख जहां घी के दीपक जलते रहते हैं ऐसे शान्त और गम्भीर स्थान में अपने सामने दो पंक्तियों में सब मठवासी बैठते हैं और मध्य में गुरुदेव विराजमान होते हैं। इस प्रकार बैठ कर धार्मिक मन्त्रों व भजनों का एक स्वर में मन्द मन्द गान सारे मठ के वायुमण्डल में एक विचित्र धार्मिक लहर उत्पन्न कर देता है।

सिद्धान्त रूप में बौद्ध धर्म ही तिब्बत में सर्वमान्य और प्रचलित है। आर्य सत्य चतुष्ट और अष्टाङ्गिक आदि

मूल सिद्धान्त सर्व श्रद्धेय हैं। इनका यह अटल विश्वास है। कि अष्टाङ्गिक मार्ग से सर्व दुखों का अन्त होजाता है। इसी धर्म का प्रतिपादन बुद्ध भगवान की दस आज्ञाओं द्वारा किया गया है। जन्ममरण के दुख से मुक्ति लाभ करना अन्य धर्मों के समान बुद्ध धर्म का भी परम आदर्श है। जीवन के सब दुखों के तीन कारण भोग अज्ञान तथा क्रोध बताये गये हैं। इनसे छुटकारा पाया हुआ व्यक्ति ही सर्वोच्च निर्वाण पद प्राप्त कर सकता है।

बुद्ध धर्म का जन्म सर्वप्रथम भारत में हुआ। जिस समय भारत भूमि में यज्ञों में पशुवध तक किया जाना धर्म बन गया था, दया धर्म का भाव लुप्त हो गया था, अन्याय युक्त कर्म करते हुए भी मनुष्य धर्मात्मा समझा जाता था, उस समय भगवान बुद्ध ने जन्म धारण किया।

चाहे तिब्बत के जन साधारण बुद्ध धर्म के महान तत्वों को न समझते हों परन्तु इसमें उनकी अपार भक्ति है। वे भूत प्रेतादि से सदा भयभीत रहते हैं। पाप के नाम पर कांप उठते हैं। वह लोग मुक्ति का मार्ग केवल दलाई लामा के द्वारा प्राप्त हो सकना मानते हैं। तिब्बत में सर्वत्र धर्म पाया जाता है। ल्हासा का महा गुरु लामा सारे प्रदेश का एक मात्र शासक है। तिब्बत का यह राजा, महा गुरु सदा अल्प वयस्क रहता है। प्रौढ़ आयु का होने पर शासन की बाग डोर अपने हाथ में नहीं ले पाता। यह

वास्तव में वहां के राज्य मंत्रियों का एक प्रकार से प्रपंच है। उनकी यही योजना है। कि लामा गुरु अल्प वयस्क ही रहे और उन पर कोई प्रभुत्व स्थापित न करने पावे।

एक लामा महागुरू की मृत्यु पर दूसरा उसी समय के उत्पन्न हुए बच्चों में से छांटकर नियुक्त करलिया जाता है। यह उसी बच्चे को अवसर प्राप्त हो सकता है। जो पूर्व जन्म में भी लामा रहा हो और उसकी स्मृति शेष हो। जिसके आधार पर वह प्रमाणित कर सके कि वह पूर्व जन्म में भी लामा था। पूर्व जन्म की स्मृति तो लामा गुरुओं में साधारण प्रवृत्ति और प्रचलित रीति सी जान पड़ती है।

तकलाकोट के समीप खोजरनाथ के प्रसिद्ध बौद्ध मठ के निकट ही एक और मठ है। जिसका गुरु लामा इस समय पंद्रह वर्षीय युवक है। इसके विषय में भी यही कहाजाता है कि यह जन्म के पांच वर्ष पश्चात् ही अपने बाल्यकाल में ही इस स्थान पर आगया था और इसने अपने आपको पूर्व जन्म का लामा होना सिद्ध कर कर दिया था। इसने अपने आपको यहीं का लामा सिद्ध कर दिया था।

तिब्बत में कोई व्यवस्थित या लिखित राज्य-नियम नहीं हैं। राज्याधिकारी अपनी मनमानी करते हैं। न कोई नियम हैं, न न्यायालय हैं और न वकील आदि हैं। समस्त राज्य अनियमित रूप में चलता है। राज्यशक्ति

और बल प्रजा का अटल विश्वास ही है। राज्य संचालन कार्य को सुविधा पूर्वक चलाने के लिये इसे दो भागों में विभक्त कर रक्खा है। (१) राज्यकर प्राप्त करना और व्यापार चलाना तथा (२) साधारण व्यवस्था करना।

राज्यकर वसूल करने वाले अधिकारी तर्जुम व छस्यु कहलाते हैं। यह लोग भारत के तहसीलदारों के समान कर वसूल करने के अतिरिक्त सरकारी व्यापारिक मार्ग, व्यापार तथा डाक की देख रेख करते हैं। सरकारी व्यापारी युङ्चुङ्ग की सहायता करना भी इनका काम है। तर्जुम का निर्धारित हल्का होता है जिसमें वह अपने आधीन चौकीदार नियुक्त करके अपना कार्य चलाता है। उसका हल्का प्रायः इतनी दूर में होता है जितनी दूर में घोड़ा एक दिन में चलकर पहुंच सके। इसका कारण यह बताया जाता है कि तर्जुम डाक के कार्य भी चलाता है। डाक लेजाने वाला एक तर्जुम के पास से चलकर दूसरे के पास ही ठहरता है। इस प्रकार यहां बीस से ऊपर तर्जुम हैं।

तर्जुम सब से छोटा और नीचे का राज्याधिकारी है परन्तु फिर भी किसी के आधीन नहीं।

इसके पश्चात् जुंगपन, करबन, रिम्मां, क्मिम्मां तथा सिफै सिटै हैं। जुंगपन भारत के राज्य कर्मचारी डिप्टी कलक्टर या कलक्टर के समान हैं शेष सब इससे ऊँचे पद के राज्यकर्मचारी समझने चाहियें। जुंगपन कर वसूल

करने के साथ साथ चाय व नमक का व्यापार तथा साधारण राज्य व्यवस्था के समस्त कार्यों का संचालन करता है।

नमक और चाय प्रत्येक तिब्बती को अवश्य ही मोल लेनी होती है। जुंगपन का आतङ्क प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में रहता है। यह जिसे चाहे अपने नौकर को भेज कर बुला लेता है। अपराधी को दण्ड देना इसका दैनिक कर्म है। यहां पर कोड़ों की सजा प्रायः प्रचलित है।

जुंगपन की नियुक्ति प्रायः तीन से पांच वर्ष तक के लिये होती है परन्तु विशेष प्रशंसनीय कार्य करने पर यह अवधि बढ़ा दी जाती है। यह ल्हासा से सीधा नियुक्त हो कर आता है। इस को वेतन के स्थान पर भूमि कर का कुछ भाग मिलता है। अपना कर प्राप्त करके शेष केन्द्रीय स्थान पर भेज देते हैं। कभी कभी पक्का भोजन ही कर स्वरूप मिलता है जिसे सुखा कर यह लोग रख लेते हैं।

इस ओर के सभी जुङ्गपनों में तकलाकोट के जुंगपन का विशेष स्थान है जिसका कारण तकलाकोट का विशाल मण्डी होना है।

करबन या गरफ़न, जुङ्गपन से ऊपर का राज्याधिकारी है। यह तिब्बती वायसराय के समान है। इस भाग का वह सर्व स्वामी है। इसका मुख्य स्थान गरटक है। यहां शीत काल में विशेष शीत पड़ती है। करबन का एक सहायक अधिकारी होता है। इनका पद भी जुङ्गपन के समान तीन

या पांच वर्ष के लिये होता है। विशेष कारणों से अवधि बढ़ भी जाती है। इनको भी वेतन के स्थान में भूमि ही मिलती है इनके पास एक छोटी सी सेना भी रहती है। करबन से उच्च पदाधिकारी तो सिर्फ़ सिटै ही होते हैं। यह वास्तव में केन्द्रस्थ राज सञ्चालक मन्त्री हैं। इन्हीं के द्वारा ल्हासा से सारे राज्य का शासन किया जाता है। इस प्रकार यह नियम विहीन तिब्बती राज्य की राजपद्धति है जहां पर डकैत और अन्य धर्म भक्त दो विपरीत दिशाओं में बहने वाले महा अव्यवस्थित दल बसते हैं। एक हैं महा निशंक और निरंकुश और दूसरे महाभीरु।

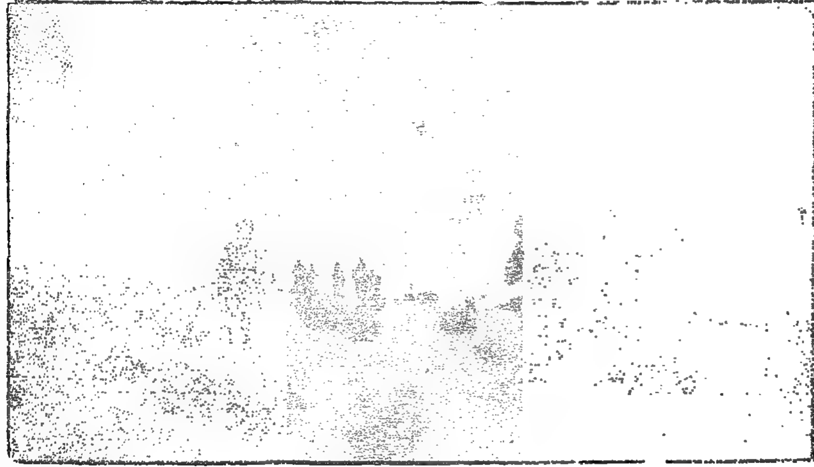
इस अध्याय में तिब्बत प्रदेश का संक्षिप्त और साधारण मानचित्र मात्र खींचने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में तो इस अज्ञ स्थान का पूर्ण विवरण प्राप्त करना सरल कार्य नहीं। परन्तु तिब्बत के इस भाग की जहां कैलाश मानसरोवर, तकलाकोट तथा ज्ञानिमा जैसे स्थान स्थित हैं उपेक्षा तो कदापि नहीं की जा सकती। साहसी विद्यार्थियों के लिये जिनकी पर्यटन प्रकृति हो ऐसे भू-भाग में भ्रमण करना भी आवश्यक है और वह सम्भवतः कष्टकर होते हुए भी मनोरञ्जक होगा।

---

१७

# वापिसी

सतलज के तट से हम कैलाश पर्वत की परिक्रमा पूर्ण करके वापिस लौटे। लौटते समय दूर से दौड़ते हुए घोड़ों की टापों की आवाज और बजते हुए घुँघरूओं का शब्द सुनाई पड़ा। हम सब लोग स्तब्ध से रह गये। देखते ही देखते दो छोटे छोटे हृष्ट पुष्ट घोड़ों पर चढ़े हुए दो व्यक्ति हमारे सामने खड़े होगये। इनका गौर वर्ण था और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित, ये व्यक्ति राजकुमार समान जान पड़ते थे। बड़े सुन्दर वस्त्र पहिने, राजमुकुट समान चीनी ढंग की टोपी ओढ़े हुए थे। इनके जानने की हमारे हृदय में



"तिब्बत" के प्रसिद्ध डाकुओं का एक दल

स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हो गई। यह शक्तिशाली व्यक्ति सचमुच ऐसे जान पड़ते थे कि मानो प्रजा की रक्षा का भार इन्होंने अपने ऊपर ले रक्खा है। कुछ देर तक इन्होंने हमारी ओर तीव्र दृष्टि डाली और फिर न जाने क्या सोच कर चुपचाप चले गये। इनको देख कर हम में से कुछ भय मानने लगे और कुछ भिन्न भिन्न कल्पनायें करने लगे।

उनके जाने पर हमने इनके विषय में पथ-प्रदर्शकों से पूछा, उन्होंने इनका वर्णन करते हुए बताया कि ये लोग डाकुओं के दलके सरदार थे ।

## तीर्थपुरी

सतलज तट के विश्राम को छोड़ते समय डाकुओं के सरदार ने जो अनायास ही प्रकट हुए थे, एक विचित्र प्रकार से सबको भयभीत कर दिया। कुछ दूर आगे बढ़ने पर मार्ग दो ओर को जाता है। एक ओर हमारे कुछ साथी मायावती के सन्यासियों की अध्यक्षता में तीर्थपुरी के लिये चल दिये। यह मार्ग दांई ओर धारचीन को छोड़ कर पश्चिम की ओर जाता है। दो दिन निरन्तर कैलाश दर्शन होते हैं। पुनः मार्ग बराबर के विस्तृत मैदान से होकर चलता है। पहिले दिन के पड़ाव से दक्षिण की ओर एक मार्ग गरटक को जाता है। गरटक तिब्बतीय वायसराय का मुख्य स्थान है।

तीर्थ पुरी की ओर के मनुष्य बकरे की खाल के वस्त्र नहीं पहिनते। किन्तु गर्म ऊनी कपड़ों का प्रयोग करते हैं। यह स्थान और स्थानों की अपेक्षा अधिक गर्म है। यहां पर गर्म जल के स्रोत बहते हैं। जिनमें स्नान करना बड़ा अच्छा लगता है। मानसरोवर आदि किसी भी स्थान पर घास आदि नहीं दिखाई पड़ी। परन्तु यहां पर कुछ हरा भरा भी दिखाई पड़ा। इस रमणीय स्थान में पवित्रता से परिपूर्ण शान्त वातावरण प्रतीत होता है। सतलज धीमी चाल से बहती रहती है।

पौराणिक गाथा है कि भस्मासुर दैत्य यहीं पर भस्म हुआ था। यहां की श्वेत भस्म यात्री लोग बड़ी श्रद्धा से अपने साथ लाते हैं। और मस्तक पर चन्दन तुल्य लगाकर अपने को धन्य मानते हैं। यह स्थान जप तप के लिये परम उपयुक्त जान पड़ता है। प्राचीन काल में यहां ऋषि, मुनि, ध्यानी और योगियों ने बड़ी तपश्चर्या की थी, इसी कारण तीर्थपुरी पवित्र तीर्थ समान बना हुआ है।

## राक्षसताल

जहां से एक दल तीर्थ पुरी की ओर मुड़ा था। वहीं से हम लोग सीधे बरखा के विस्तृत मैदान की ओर चले। यह लम्बा चौड़ा चौरस मैदान जंगली घोड़ों के

भागने का क्षेत्र है। इस क्षेत्र को पार करके पुनः मानसरोवर के दर्शन करके, विशाल राक्षस ताल के किनारे किनारे चल दिये। राक्षस ताल मानसरोवर से भी अधिक लम्बा । इसके मध्य में एक गुम्फा है जिसमें शीत काल में जल के जम जाने से लामा लोग, हिम के पुल पर चल कर वहां पहुँचते हैं। और निवास करते हैं। कहा जाता है कि मानसरोवर और राक्षस ताल किसी समय एक ही थे। परन्तु काल चक्र से इसके बीच में एक पर्वत निकल आया है ।

राक्षस ताल का जल बड़ा खराब है । पहिले इस जल को कोई नहीं पीता था परन्तु अब इसमें एक धारा मानसरोवर से आकर गिरती है जिसके कारण इस का जल पीना प्रारम्भ होगया है। फूल पत्तों का कहीं भी पता नहीं चलता । सर्वत्र श्मसान समान भूमि दिखाई पड़ती है। चलना कठिन हो जाता है।

यहां से चल कर जब तक हम लीपूलेक को पार कर, तिब्बत प्रदेश को अन्तिम नमस्कार नहीं कर लेते, उस समय तक कोई भी मनोरंजक दृश्य नहीं दिखाई पड़ता । लीपूलेक को पार करते ही हमने पुनः भारत भूमि पर पदार्पण किया। गर्ब्यांग में पहुँचते ही एक बार पुनः हरे भरे खेत, फले फूले वृक्ष दिखाई पड़े । इधर उधर बालक वृद्ध स्त्री पुरुष अपने अपने काम काज में लगे दिखाई पड़े।

इस समय वर्षा ऋतु का भी प्रारम्भ हो गया। पहिले की अपेक्षा अधिक हरियाली दिखाई पड़ने लगी। अब यहां पहिले की अपेक्षा अधिक जीवन प्रतीत होता था। पिछले शुष्क स्थानों से जो उदासीनता हमारे साथियों में उत्पन्न होगई थी उसे इस ऋतु-परिवर्तन ने शीघ्र ही नष्ट कर दिया।

---

# परिशिष्ट

## १

## यात्रा वृतान्त

१७ जून १६३५ ई० को सायंकाल हम लोग पैदल नैनीताल से उतर कर गेठिया से भुवाली होते हुए भीमताल पहुँचे। दो दिन तक हमने इस प्रदेश में भ्रमण किया। दमयन्ती ताल, राम सीता ताल, पन्ना ताल, गरुड़ ताल और नौकुछिया ताल देखे।

२० जून को ६ मील चल कर रामगढ़ में विश्राम किया। यह स्थान सेब के फल-वृक्षों के लिये प्रसिद्ध है।

२१ जून को तल्लारामगढ़ होते हुए १० मील चल कर मुक्तेश्वर नामक शिखर पर विश्राम किया। यह स्थान

इम्पीरियल इंस्टीट्यूट आफ़ वेटरनिटी रिसर्च के लिये प्रसिद्ध है। नैनीताल जिले में यह एक बहुत ऊँची चोटी है।

२३ जून को मुक्तेश्वर से अल्मोड़ा के लिये प्रस्थान किया। ९ मील की सीधी उतराई तथा ५ मील चढ़ाई और साधारण मार्ग पर चल कर हम सब अल्मोड़ा पहुँचे। अल्मोड़ा में पहुंच कर दो ही दिन में हमने कैलाश यात्रा का निश्चय और प्रबन्ध कर लिया।

२६ जून को प्रातःकाल ६ बजे अल्मोड़ (५००० फ़ीट) से सात मील चल कर दो पहर बाराछीना आये। यहां पर एक स्कूल, डाकखाना और छोटा सा बाजार भी है। सायंकाल ५ मील आगे धौलादिना (६००० फ़ीट) में ठहरे। यह स्थान सुन्दर शीतल और सुखदाई है। यहां पर कुछ दुकानें और डाकबंगला भी है।

२७ जून को ११ मील की दूरी पर सरयू नदी के तट शीराघाट पर दोपहर के समय विश्राम किया। यहां पर वृक्षों की शीतल छाया बड़ी मनोमोहक थी। सायंकाल को ७ मील आगे गनाई—जहां पर कुछ दुकानें डाकबंगला और डाकखाना भी है—होते हुए तपोवन पहुँचे। जहां रात्रि में विश्राम किया।

२८ जून को १२ मील की दूरी पर बेरीनाग (७०४० फ़ीट) आये। यह एक अच्छी बड़ी बस्ती है। यहां पर डाकखाना, अस्पताल, स्कूल, डाकबंगला और बाजार हैं

यहां से ढाई मील की दूरी पर गढ़चल में रात्रि के समय विश्राम किया ।

२९ जून को १० मील चल कर थल (३००० फ़ीट) में ठहरे । इस स्थान पर स्कूल, डाकखाना, डाकबंगला तथा कुछ दूकानें हैं और रामगंगा का किनारा है ।

३० जून को प्रातः १० मील पर दीदीहाट (५५०० फ़ीट) आये । सायंकाल के समय ८ मील चलने पर अस्कोट (५००० फ़ीट) पहुँचे । यहां एक छोटा सा बाजार है और ठहरने की सब प्रकार की सुविधा पाई जाती है ।

१ जुलाई को हम उतराई करके ८ मील पर बलबाकोट (३००० फ़ीट) होते हुए आगे ४ मील चल कर कालिका नामक रमणीक स्थान पर पहुंचे और यहीं पर विश्राम किया ।

२ जुलाई को हम धारचुला (३००० फ़ीट) ६ मील चल कर पहुंचे । यहां पर सब सुविधायें मिलती हैं । यहीं से कुली आदि भी बदलने पड़ते हैं यहां से आगे का मार्ग भयानक बन जाता है ।

३ जुलाई को ८ मील का भयंकर मार्ग चल कर खेला ( ५५०० फ़ीट ) पहुंचे । यहां पर ठहरने के लिये दुकानें हैं । डाकखाना भी है ।

४ जुलाई को २ मील कठिन उतराई और ३ मील की कठिन चढ़ाई करके हम पाङ्ग नामक बस्ती में पहुंचे । यहां

पर कोई दुकान आदि नहीं है । सायंकाल के समय ६ मील आगे चल कर सिरखा ग्राम में विश्राम किया ।

५ जुलाई को ११ मील का कठिन मार्ग ते करके जुमी (८००० फ़ीट) पर आये । यहां एक दुकान है और ठहरने के लिये एक छायादार स्थान है ।

६ जुलाई को हम निर्वानी का कठिन मार्ग पार करके ७ मील की दूरी पर माल्पा (७००० फ़ीट) आये ।

७ जुलाई को ७ मील की चढ़ाई करके बुधी (६५०० फ़ीट) आये । सायंकाल को फिर १००० फ़ीट की चढ़ाई करके ५ मील चल कर गर्व्यांग (१०५०० फ़ीट) पहुँचे । यह बृटिश राज्य का अन्तिम डाकखाना है । यहां से तिब्बत यात्रा के लिये सब प्रकार की तैयारी करनी पड़ती है ।

१० जुलाई को हम तिब्बत के लिये चल दिये अब हमारे साथ कुलियों के स्थान पर टट्टू व झब्बू थे । हम सब इन्हीं पर सवार थे । गर्व्यांग से १० मील से आगे जाकर काले पानी (१२००० फ़ीट ) की नदी के किनारे हमने अपने डेरे लगाये और यहां पर विश्राम किया ।

११ जुलाई को ६ मील चल कर श्यानचुम (१५००० फ़ीट) में डेरे लगाये । यह बृटिश राज्य सीमा का अन्तिम स्थान है ।

१२ जुलाई को प्रातःकाल लीपूलेक की घाटी (१६०५० फ़ीट) पर चढ़े । यहां पर सांस लेने के लिये पूरी तरह प्राण

वायु भी नहीं मिलती। यहां पहुंचने पर भारत की सीमा समाप्त होजाती है। यहां तक कुल १७३ मील अल्मोड़ा से आये। यहां से आगे तिब्बती चौरस मैदान में १२ मील चल कर प्रसिद्ध व्यापारी मण्डी तकलाकोट (१३१०० फ़ीट) में पहुँचते हैं।

१३ जुलाई को ८ मील की सरल चढ़ाई करके सजुङ्ग (१४४०० फ़ीट) नामक स्थान पर पहुँचे और यहीं पर अपने विश्राम का प्रबन्ध किया।

१४ जुलाई को रहसङ्ग (१४८५० फ़ीट) नामक स्थान पर एक स्रोत के तट पर आकर ठहरे।

१५ जुलाई को मानसरोवर (१४९०० फ़ीट) के तट पर विश्राम किया।

१६ जुलाई को लगभग ८ मील मानसरोवर के किनारे किनारे चल कर जीजू गुम्फा (१५००० फ़ीट) पर ठहरे।

१७ जुलाई को १२ मील के अन्तर पर बुम्बपू (१५००० फ़ीट) स्थान पर पहुँचे। यहां से कैलाश दर्शन होता है। कैलाश परिक्रमा भी यहीं से प्रारम्भ होती है।

१८ जुलाई को ६ मील चढ़ाई करके डिण्डिफू गुम्फा (१७००० फ़ीट) पहुँच कर एक दिन विश्राम किया।

२० जुलाई को हमने ५ मील की चढ़ाई कर के अपनी यात्रा के उच्चतम स्थान गौरी कुंड (१८६०० फ़ीट)

में पग धरा, उसी दिन १३ मील और चल कर भिएडफू गुम्फा सतलज नदी के तट पर आये।

इस प्रकार हमारी यात्रा सम्पूर्ण हुई। अल्मोड़ा से यहां तक हम लोग २६२ मील आये। यहां से वापिस हुए। वापिसी का वही मार्ग है जिससे हम गये थे। वापिसी का संक्षिप्त वृतान्त भी हम दे देना उचित समझते हैं।

२१ जुलाई को हम बरखा ठहरे। २२ जुलाई को राक्षस ताल होते हुए रहसङ्ग पहुँचे। २३ जुलाई को हम बरफू और २४ जुलाई को तकलाकोट आये। २५ जुलाई को तकलाकोट से ६ मील दूर खोजरनाथ होकर लौटे। २६ जुलाई को तिब्बती सीमास्थ चौकी माला पर ठहरे। २७ जुलाई को लीपूलेक पार करके भारत में आकर अंतिम काले पानी में डेरे डाल कर विश्राम किया। २८ जुलाई को गर्ब्यांग आ पहुँचे। यहां से १ अगस्त को हरी भरी भूमि पर पैदल माल्या लौटे।

२ अगस्त को जुमी होकर श्यामखोल पहुंचे, ३ अगस्त को सिरखा होते हुए पाङ्ग ग्राम में आकर ठहरे। ४ अगस्त को धारचुला आ पहुँचे। ५ अगस्त को गोरीपुल, गोरजिमा, गोरीगङ्गा के तट पर ठहरे। ६ अगस्त को अस्कोट व दीदीहाट मार्ग में छोड़ कर थल में आकर विश्राम किया। ७ अगस्त को वेरीनाग होकर सुखल्याड़ी ग्राम में आकर ठहरे। ८ अगस्त को आम आदि फल खाते

हुए हम लोग किनारी छीना स्थान पर आये। ६ अगस्त को यहां से धौलछीना होकर बाराछीना होते हुए अल्मोड़ा आये। इस प्रकार हमारी यात्रा की दिनचर्या समाप्त होती है।

अल्मोड़ा से मोटर लारियां रानीखेत होती हुई काठगोदाम पहुँचा देती हैं।

२

# हमारी आवश्यक सामग्री

हमारा कैलाश-यात्रा का विचार अनायास ही हो जाने के कारण हम अपने साथ सब ही आवश्यक सामग्री तो नहीं ले जा सके। तथापि हमारी यह सामग्री हमें अल्मोड़ा तक सुरक्षित लाने के लिये पर्याप्त ही रही।

वस्त्र :—ऊनी ओवर कोट, साधारण गरम कोट, कुछ सूती व ऊनी कमीजें, एक जोड़ा गरम पाजामा, ऊनी बनियान या गरम जाकट, सूती ऊनी मोजे, गरम टोपी व ऊनी टोपा, गरम दस्ताने, बरसाती कोट, छाता, मफलर। इनके अतिरिक्त नित्य के प्रयोग के लिये कुछ धोती कुर्ते आदि।

बिस्तर :—होल्डौल, बरसाती कपड़ा, एक जोड़ा थुल्मा या कम्बल, बिछाने की चादर, साधारण ओढ़ने के लिये कुछ गरम कपड़ा और तकिया।

औषधियां :—वैसलीन; ऐसप्रीन, क्यूनीन, कैस्टोफीन, अमृतधारा, टिञ्चरआयोडिन, बोरिकएसिड, बोरिक-औयण्टमेण्ट, बोरिक लिण्ट, पट्टी, धौट पेण्ट, कफ क्योर ( खांसी की दवा ) सूंघने का नमक, इलायची का सत, शिर दर्द की दवा, सोडा, बराण्डी, कपूर।

भोजन :—अचार, नीम्बू, मुरब्बे, चाय, डिब्बे का दूध, मक्खन, मेवा, बूरा तथा अन्य सब प्रकार का भोजन।

फुटकर वस्तुएं:—एक जोड़ा जूते, हरा चश्मा (गोगल्स) पहाड़ी लकड़ी, स्टोव, मिट्टी का तेल, स्प्रिट, बक्स दिया-सलाई, मोम बत्ती, टार्च लाईट, साबुन, तेल, दन्तमञ्जन, सुई, डोरा, बटन, चाकू, कैंची, भोजन बनाने के बर्तन, शीशा, कङ्घा; पेंसिल, कागज़, पुस्तकें, लालटेन।

भारत में न तो बहुत ठंड ही होती है और न भोजन ही दुष्प्राप्य है। परन्तु भारत छोड़ते समय तिब्बत के लिये गर्ब्यांग से सर्व प्रकार परिपूर्ण होकर जाना चाहिये। गर्ब्यांग में किराये को भी कम्बल मिल जाते हैं।

कुली व सवारी :—कुली, खच्चर, व घोड़े अल्मोड़े से धारचुला तक के लिये मिलते हैं। इस भाग में सवारी

के लिये घोड़े तथा डाण्डी मिल जाती है। डाण्डी को चार पांच आदमी ले चलते हैं। इसी को बद्रीनाथ की ओर झम्पान कहते हैं । कुलियों और घोड़े वालों से सहज ही निपटारा नहीं हो पाता । यह लोग बड़े कठोर, झगड़ालू, अशिक्षित और असभ्य होते हैं । जो लोग पैदल चल सकते हैं उनके लिये अल्मोड़ा से ही घोड़ा किराये को करना आवश्यक नहीं।

धारचुला में कुली आदि बदलने पड़ते हैं। यहां से किये हुए कुली गर्ब्यांग तक जाते हैं । इस मार्ग में घोड़े नहीं चल पाते। डाण्डी पर ही सवारी चलती है । धारचुला तक कुमायूं के कुली चलते हैं। और यहां से आगे भोटिया कुली मिलते हैं। यह लोग भार ले जाने में कुमायूं के कुलियों से बहुत अधिक समर्थ होते हैं। परन्तु व्यवहार में उनसे भी अधिक कठोर और असभ्य होते हैं।

गर्ब्यांग से आगे सामान लेजाने के लिए अलग ही प्रबन्ध करना होता है। यहां से घोड़े, खच्चर तथा झब्बू मिल जाते हैं। इधर तिब्बती लोगों के साथ भी व्यवहार करना पड़ता है। यहां से सवारी के लिये भी घोड़े आदि मिलते हैं। इधर जो घोड़ों के साथ घोड़े वाले या उनके नौकर मिलते हैं वह भोटिया या हुनिया अर्थात् तिब्बती होते हैं। यह लोग तो बहुत भयानक और भयङ्कर वृत्ति के

दैत्य तुल्य मनुष्य रूप जन्तु हैं। दुनिया तो इधर की भाषा भी नहीं समझते और उनसे कुछ भी कहना झगड़ा मोल लेना होता है। इन निर्बुद्धि नर-पशुओं से तो भली प्रकार व्यवहार हो जाना असम्भव ही है।

---

३

## अनुमानिक व्यय

साधारण एक व्यक्ति को ५०) के वस्त्र चाहियें। भारतीय ढंग का साधारण भोजन अल्मोड़ा जाते और आते समय कुल व्यय लगभग ७५)। साथ ही सामग्री ले जाने के लिये अल्मोड़ा से धारचुला तक १०)। धारचुला से गर्ब्यांग तक ५) और गर्ब्यांग से कैलाश होकर लौटने तक लगभग २५) और गर्ब्यांग से अल्मोड़ा तक १५)। इस प्रकार यह कुल हुए ५५)।

सवारी के लिये घोड़ा या डाण्डी अल्मोड़ा से गर्ब्यांग तक तो स्वस्थ युवक के लिये अनावश्यक है। परन्तु गर्ब्यांग से कैलाश और वापिस होने के लिये घोड़ा किराया करना

बड़ा ही सुखकर होता है तथा मार्ग की कठिनाइयों से बचाता है। घोड़ों का किराया २५) होता है। इस प्रकार कुल व्यय हुआ :—

| | |
|---|---|
| वस्त्र | ५०) |
| भोजन | ७५) |
| कुली आदि | ५५) |
| घोड़ा | २५) |
| कुल व्यय | २०५) |

इन सब के अतिरिक्त पथ-प्रदर्शक, रक्षक, और डेरे आदि के किराये का व्यय भी रहता है। तिब्बत में बन्दूक़ सहित रक्षकों की बड़ी आवश्यकता है कारण बिना इनके डाकुओं से सुरक्षित बच कर आना प्रायः असम्भव है। पथ प्रदर्शक मार्ग बताते तथा दोभाषिये का कार्य करते हैं। इनका वेतन १) प्रति दिन होता है। परन्तु यह व्यय सब एक साथ ही सम्मिलित रूप से किया जाता है। इसी प्रकार डेरे का किराया ५) होता है। इसमें ५ आदमी साधारणतया ठहर सकते हैं। इन सब का व्यय प्रति व्यक्ति पर १०) पड़ जाता है। इनके अलावा और बचत भी की जा सकती है। जैसे सवारी के लिये घोड़ा बजाय गव्यांग के यदि तकलाकोट सेकिया जाय तो केवल ७) में हो जाता है। इस प्रकार न्यूनतम १५) की बचत हो सकती है। गव्यांग से

कैलाश होकर आने में २० दिन लगते हैं। इस बीच और कोई अदृश्य व्यय हो जाय इसके लिये भी स्थान रखते हुए २२५) का व्यय अल्मोड़ा से पैदल चलने वाले के लिये प्रतीत होता है और जो अल्मोड़ा से घोड़ा लेकर चले तो ३००) का व्यय पर्याप्त हो सकता है।

---

४

# ठहरने और विश्राम के स्थान

अल्मोड़ा से अस्कोट तक महकमे जंगलात के डाक बँगले हैं। यह ठहरने के लिये सर्वोत्तम स्थान हैं परन्तु इसके लिये डिविजनल फारेस्ट आफीसर से अनुमति लेनी पड़ती है। इसके साथ डिस्ट्रिक्टबोर्ड के भी डाकबंगले हैं। जिनमें सब प्रकार का आराम है परन्तु आठ आना किराया देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त खेला तक निरन्तर प्रत्येक स्थान पर दुकानें हैं जहां पर भोजन सामग्री तो मोल बिकती ही हैं परन्तु ठहरने के लिये भी बिना व्यय किये ही दुकानदार स्थान देता है। यह प्रबन्ध साधारणतः भारतीयों के लिये तो सबसे अधिक सस्ता पड़ता है।

खेला से आगे तो प्रायः ग्रामों में ही ठहरना होता है परन्तु सब ही ग्रामों में स्कूल हैं जिनमें ठहरने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। भोजनादि के लिये सब सामग्री ग्रामीण मोल बेचते हैं। इसके अतिरिक्त दारमा सेवासंघ के प्रयत्न से एक धर्मशाला मालया और एक गर्व्यांग में बन गई है।

गर्व्यांग से आगे तो जीवन ही बदल जाता है। वहां तो मकानादि का नाम ही नहीं केवल, डेरों में ही विश्राम करना होता है। यहां चलते फिरते अस्थाई घर में ही गुज़र करनी पड़ती है। तकलाकोट के सिवाय सर्वत्र यही जीवन रहता है। तकलाकोट में तो दारमा सेवासंघ ने एक धर्मशाला बनवा दी है। तिब्बत में तो जहां जल और घास देख पड़ी कि उपयुक्त निवास स्थान समझा गया और वहीं पर डेरे लगा विश्राम करते हैं।

वैसे तो सर्वत्र ही दिन में विश्राम को और रात्रि में ठहरने को स्थान मिल ही जाते हैं परन्तु वे कष्टकर और गन्दे होते हैं। कभी कभी तो रात्रि में ठहरने की जगह भीड़ से भर जाती है। इस मार्ग में ठहरने, विश्राम करने आदि का कोई निश्चित प्रबन्ध नहीं। इस कारण यात्री लोग सदा अनिश्चित दशा में ही रहते हैं।

---

५

# संग-सखा

मनुष्य सामाजिक जीव है। बिना संग और साथ के वह जीवन में निराश सा हो उदास ही देख पड़ता है। संसार का सारा व्यवहार ही मनुष्य के पारस्परिक सम्मिलन और स्नेह के आधार पर स्थित है। यदि मनुष्य में से स्नेह और संग की कामना निकल जाय तो वह समाज को त्याग एकान्त-सेवी बन जाय। फिर उस पर साधारण तो क्या जीवन और मरण सम्बन्धी प्रश्न तक भी, जिससे सारा समाज दहल जाता है, कुछ भी प्रभाव न डाल सके।

वास्तव में ऐसे व्यक्ति तो बुरे या भले कोई विरले ही होते हैं, जिनको अपवादरूप मान कर सामाजिक चर्चा में छोड़ देना पड़ता है। साधारणतः संग और सखा की चाह मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य संग और सखाओं के बल पर ही अपने सारे जीवन की रचना और सञ्चालन करता है। चाहे यह सत्य भी हो कि :—

संग-सखा सब बन गये एक न निबहो साथ,
कह नानक या विपद में एक टेर रघुनाथ।

परन्तु फिर भी मनुष्य-हृदय अप्रत्यक्ष और अनन्त शक्ति की अनन्य कल्पना में पूर्ण विश्वास रख, साहसिक हो, बिना निराश हुए कार्य संलग्न नहीं होता। वास्तव में मनुष्य निकटस्थ संग और सखाओं से ही प्रभावित हो सब कार्य करता है। फिर हमारी इस कठिन और निर्जन वन यात्रा में संग और सखाओं की भी अनिवार्य आवश्यकता है। इस यात्रा में ४५ दिन लगते हैं। तिब्बत में तो केवल निर्जन बन ही बन है परन्तु भारत के इस भाग में भी कठिन और भयानक मार्ग हैं। ऐसी दशा में सुपरिचित और स्वेच्छित सखा का संग ही सुखकर और सहायक होता है। मन मिले, एक प्रकृति के सहज सखा तो इस दुष्कर यात्रा को भी सहज ही स्वर्ग समान आनन्द-

मयी बना सकते हैं। अन्यथा तो अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग हो जाता है। कोई ईश्वर चिन्तन में संलग्न है तो कोई व्यर्थ वागाडम्बर में मस्त है। यदि कोई निद्रावश सोने को व्याकुल है तो कोई ईश्वर स्तुति गान में मस्त और कोई व्यर्थ के वाद विवाद में उन्मत्त है। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकृति और बे मन के संग में स्नेह और सखाभाव का सर्वत्र अभाव हो, सारा सुख महादुख और कलह में परिणत हो जाता है। कभी भी किसी प्रश्न पर एक मत हो निबटारा ही नहीं हो पाता और सदा ही "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" वाली कहावत चरितार्थ होती है।

यही सर्वोत्तम है कि सुपरिचित स्नेह और स्वेच्छित सखाओं के साथ ही ऐसी यात्रा की जाय। यह आवश्यक नहीं कि सखाओं की संख्या बहुत ही हो, कुछ लोग यह समझ कि तिब्बत में एक बड़ी मण्डली के बिना जाना असम्भव ही है अल्मोड़ा से ही एक दल बना कर चलते हैं, यह भूल है। इस प्रकार का दल बना कर चलना तो साधारण झगड़ा ही मोल लेलेना होता है। भय निवारण और सुरक्षण के लिये तो गर्व्यांग से चलते समय प्रायः कुछ और भी यात्री मिल कर दल की जन-संख्या बढ़ा ही देते हैं। इस कारण आरम्भ से तो संग और सखा की संख्या न्यूनतम ही परमानन्दप्रद होती है। वास्तव में

एक ही सखा सर्वोत्तम साथी और संगी रहता है और रह सकता है। हिन्दी की यह कहावत पूर्णतः सत्य है। कि "एक का एकला दो का मेला और तीन का झमेला" परन्तु इस पर भी यह प्रतिबन्ध है कि मन मिले का मेला नहीं एकला ही भला।"

---